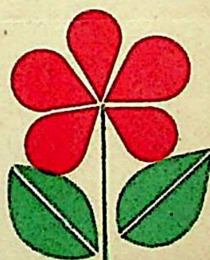
एकांकी कुञ्ज



एकांकी-कुञ्ज

सम्पादक
डॉ० गोपीनाथ तिवारी • डॉ० देवर्षि सनाढ्य
हिन्दी विभाग,
गोरखपुर विश्वविद्यालय



विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

तृतीय संस्करण : १९७७ ई०

भारत सरकार द्वारा उपलब्ध किये गये रियायती
मूल्य के कागज पर मुद्रित ।

तीन रुपया

प्रकाशक : विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, चौक, वाराणसी ।

मुद्रक : धर्मराज प्रिंटिंग प्रेस, एस० २६/१३, मोरापुर बसहीं, वाराणसी ।

प्रस्तुत संग्रह

हिन्दी में अनेक एकांकी-संग्रह उपलब्ध हैं, अतः इस नये संकलन की आवश्यकता पर प्रश्न उठ सकता है।

अनेक वर्षों के एकांकी लेखन, अध्यापन और उनके मंच पर प्रस्तुतीकरण में सहायक रहने के अनुभव ने मुझे यह नया संकलन प्रस्तुत करने को प्रेरित किया।

विगत दशक में नाटक तथा एकांकी के शिल्प में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन तथा विकास हुए हैं। ये साहित्य की एक विधामात्र नहीं रह गये, बल्कि रंगमंच की नवीनतम तकनीक से जुड़ गये हैं। फलस्वरूप नाटक का अध्ययन साहित्यिक कृतित्व से अधिक रंगमंच की दृष्टि से किया जाने लगा है। कुछ विश्वविद्यालय तो नाटक तथा एकांकी के अध्ययन के लिए रंगमंच की नवीनतम तकनीक का अध्यापन भी करने लगे हैं और विभाग के अन्तर्गत नवीनतम तकनीक से सुसज्जित रंगमंच की स्थापना भी कर रहे हैं। इससे नाटक की विधा और अधिक सशक्त होगी और हिन्दी-साहित्य में 'रूपक काव्य' की नयी प्रतिष्ठा होगी। जिन एकांकी रचयिताओं के एकांकी यहाँ संकलित हैं, उनके प्रति मैं आभारी हूँ; कृपापूर्वक उन्होंने इसके लिए अनुमति दी, तदर्थ धन्यवाद।

—गो० ना० ति०

अनुक्रम

भूमिका

प्राचीन संस्कृत एकांकी

आधुनिक हिन्दी नाटक संस्कृत की नाट्य-परम्परा से रस-ग्रहण करता भारतेन्दु-काल में पुष्पित तथा पल्लवित हुआ, किन्तु एकांकी के क्षेत्र में इसने पूर्ण भिन्न दिशा ग्रहण की। भारतेन्दु-काल में नाटक के क्षेत्र में संस्कृत तथा पश्चिमी शैलियों का समावेश हुआ दिखायी देता है। उदाहरणस्वरूप भारतेन्दुकृत 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक तथा 'नील देवी'। भारतेन्दु तथा तत्कालीन अन्य नाटककारों ने पश्चिमी शैली पर लघु नाटक लिखने का प्रयास किया और काशीनाथ खत्री ने एकांकी जैसी विधा के रूप में 'गुन्नौर की रानी', 'सिन्धुदेश की राजकुमारियाँ' की रचना की। इनमें 'गुन्नौर की रानी' में आधुनिक एकांकी के प्रायः सभी तत्त्व मिलते हैं। अतः आधुनिक हिन्दी एकांकी का आरम्भ इसी से माना जा सकता है। 'एक घूँट', 'कारवाँ', 'वादल की मृत्यु', आदि ने नाटक से भिन्न एकांकी का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रस्तुत कर दिया। आधुनिक हिन्दी एकांकी को संस्कृत की नाट्य-परम्परा से जोड़ना कठिन है; क्योंकि संस्कृत के नाट्य-सिद्धांतों के अनुरूप एकांकी का स्वरूप विकसित नहीं हुआ और संस्कृत के एक अंकवाले नाटकों—भाण, व्यायोग, प्रहसन, वीथी, गोष्ठी, काव्य, भणिका आदि से आधुनिक एकांकी का नाता-रिश्ता नहीं जुड़ पाता। संस्कृत के इन एक-अंकी नाटकों में पूर्वरंगविधान, आमुख, प्रस्तावना, सूत्रधार-नट-नटी, वस्तु-नेता-रस आदि का प्रयोग अनेक अंकोंवाले नाटकों के समान होता था। इनमें काव्यपूर्ण शैली तथा रस की प्रधानता थी; संधियों के समावेश के निश्चित नियम थे। ये संस्कृत-एकांकी, संस्कृत-नाट्य-शास्त्र के नियमों से निवद्ध थे। इनमें अलौकिकता तथा आदर्शवादिता की अधिकता थी।

आधुनिक एकांकी

आधुनिक एकांकी पूर्णतया लौकिक हैं और इनका आधार जीवन की यथार्थ अनुभूति है। स्वाभाविकता इसका अनिवार्य गुण है, अभिनेयता इसकी पहली शर्त है। आधुनिक एकांकी का उद्देश्य केवल मनोरंजन या उपदेश नहीं है, वरन् वास्तविक जीवन की कोई समस्या अपने यथार्थ रूप में चित्रित करना इसका लक्ष्य है। आधुनिक एकांकी का विषय-क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, लघु मार्मिक संवाद, अन्तर्द्वन्द्व की प्रधानता, संकलन-त्रय का निर्वाह, विस्तृत रंग-संकेत, तीव्र गति—आधुनिक एकांकी की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

एकांकी का लक्षण

एकांकी का अर्थ है—"एक अंकवाला नाटक", किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी नाटक का एक अंक अलग कर दिया जाय तो उसे एकांकी कह देंगे। एकांकी किसी बड़े नाटक का खण्ड या अंश न होकर अपने में पूर्ण एक रचना है। स्वतन्त्र नाट्य-विधा होने के कारण एकांकी का निजी व्यक्तित्व है।

विद्वानों ने एकांकी की भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। इनमें से किसी की दृष्टि एकांकी के आकार-प्रकार पर रही है, तो किसी की संरचना पर, किसी की टेकनीक पर, तो किसी की अभिनेयता पर। पर्सीवल वाइल्ड की दृष्टि में एकांकी की प्रेरणा, उसका लक्ष्य; उसकी आत्मा एकात्मकता में है। सिडनी वॉक्स भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहता है कि एकांकी का वैशिष्ट्य समाहार में है। एकांकी की कथावस्तु एक होनी चाहिए, उसका लक्ष्य होना चाहिए कि एक प्रभाव उत्पन्न हो। उसमें एक ही स्थिति का चित्रण हो, एक ही चरित्र का अंकन हो अथवा विविध चरित्रों का केन्द्रीकरण एक चरित्र पर हो। 'हिन्दी-साहित्यकोष' भी इसी विशेषता को लक्ष्य में रखकर एकांकी के विषय में कहता है—"एकांकी नाटक-साहित्य का वह नाट्य-प्रधान रूप है जिसके माध्यम से मानव-जीवन के किसी एक पक्ष, एक चरित्र, एक कार्य, एक परिपार्श्व, एक भाव की ऐसी कलात्मक व्यंजना की जाती है कि ये एक अविकल भाव से अनेक की सहानुभूति और आत्मीयता प्राप्त कर लेते हैं।"

डॉ० नगेन्द्र एकांकी की एकाग्रता को ध्यान में रखकर एकांकी की परिभाषा देते हुए कहते हैं—"स्पष्टतया एकांकी एक अंक में समाप्त होनेवाला नाटक है और यद्यपि इस अंक के विस्तार के लिए कोई विशेष नियम नहीं है, फिर भी छोटी कहानी की तरह उसकी एक सीमा तो है ही। परिधि का यह संकोच, कथा-संकोच की ओर इंगित करता है—और एकांकी में हमें जीवन का क्रमबद्ध विवेचन न मिलकर उसके एक पहलू, एक महत्त्वपूर्ण घटना, एक विशेष-परिस्थिति अथवा एक उद्दीप्त क्षण का चित्रण मिलेगा।"

सेठ गोविन्ददास एकांकी की इस विशेषता को ध्यान में रखकर एकांकी पर प्रकाश डालते हैं—"एक ही विचार पर एकांकी नाटक की रचना हो सकती है। विचार के विकास के लिए जो संघर्ष अनिवार्य है, उस संघर्ष के पूरे नाटक में कई पहलू दिखाये जा सकते हैं, परन्तु एकांकी में केवल एक पहलू।"

पं० उदयशंकर भट्ट का मत है—"एकांकी नाटक में जीवन का एक अंश, परिवर्तन का एक क्षण, सब प्रकार के वातावरण से प्रेरित एक झोंका, दिन में एक घंटे की तरह, मेघ में बिजली की तरह, वसंत में फूल के ह्रास की तरह व्यक्त होता है।"

एकांकी में एकाग्रता-प्राप्ति की दृष्टि से अन्विति-त्रय का समावेश आवश्यक माना गया है और तीनों अन्वितियों का प्रयोग रखनेवाले एकांकियों को सफल एकांकी कहा गया है। समय और स्थल की अन्विति भले ही न हो; किन्तु कार्य-अन्विति अनिवार्यतः होनी चाहिए, ऐसा विचार नाटककारों और नाट्यशास्त्रियों ने प्रकट किया है। कैनेथ मैकगोवन भाव की अन्विति रखनेवाले एकांकी को ही सफल एकांकी मानते हैं।

ए० ई० एम० वेलिस एकांकी में संघर्ष को महत्त्व देते हुए कहते हैं कि एकांकी में संघर्ष को प्रधानता होनी चाहिए, क्योंकि संघर्ष सभी नाटकों का प्राण है। डॉ० रामकुमार वर्मा एकाग्रता के साथ कौतूहल के निर्वाह को भी स्थान देते हैं। उनका मत है, "एकांकी नाटक में एक ही घटना होती है और वह घटना नाटकीय कौशल से ही कौतूहल का संचय करती हुई चरम-सीमा (क्लाइमेक्स)

तक पहुँचती है। उसमें कोई अप्रधान प्रसंग नहीं रहता—विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर पुष्प की भाँति विकसित होती है—मेरे सामने एकांकी नाटक की भावना वैसी है जैसे एक तितली फूल पर बैठकर उड़ जाये।" विष्णुप्रभाकर एकांकी का लक्षण देते हुए कहते हैं, "बड़ा नाटक यदि उपवन के समान है तो एकांकी स्वतन्त्र रूप से एक गमला है जिसमें मात्र एक प्रधान घटना है, कोई अप्रधान प्रसंग नहीं है, विषयांतर भी नहीं है और घटना बीच में से उठा ली गयी है। तीव्र गति, कौतूहल, संघर्ष, चरम-सीमा, अभीप्सित प्रभाव अनिवार्य है। वर्णन नहीं है, प्रतिनायक भी नहीं है, मितव्ययिता और सीधा आक्रमण।" डॉ० दशरथ ओझा एकांकी का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं, "आज के एकांकी नाटकों का विश्लेषण करके हम कह सकते हैं कि जो नाटक एक ही परिस्थिति और एक ही समस्यावाला हो, जिसके प्रवेश में कौतूहल और वेग, गति में विद्युत-सी वक्रता और तेजी, विकास में एकाग्रता और आकस्मिकता के साथ चरम-सीमा तक पहुँचने की व्यग्रता हो और जिसका पर्यवसान चरम-सीमा पर ही प्रभाव की तीव्रता के साथ हो जाता हो, जिसमें प्रासंगिक कथाओं का प्रायः निषेध, घटनाओं की विविधता का निवारण तथा चारित्रिक प्रस्फुटन में आदि, मध्य और अवसान का वर्जन हो, उसे एकांकी कहना चहिए।"

विद्वानों और नाटककारों द्वारा की गयी एकांकी की परिभाषाओं पर विचार करने से आधुनिक एकांकी नाटक के प्रमुख तत्त्व और टेकनीक सुगमता से स्पष्ट हो जायेंगे। एकांकी में निम्न लक्षणों का होना आवश्यक है :

१. केवल एक अंक, एक घटना, एक परिस्थिति हो।
२. एक सुनिश्चित लक्ष्य हो, कोई एक ही समस्या हो।
३. कथानक में कसावट, गति में तीव्रता, विकास में एकाग्रता और आकस्मिकता हो।
४. स्वाभाविक यथार्थवादी चित्रण, पात्र कम-से-कम हों।
५. एक घटना होने पर भी पूर्णता का प्रभाव हो।
६. द्वन्द्व, आन्तरिक संघर्ष और मनोवैज्ञानिकता का आधार हो।
७. पात्र वास्तविक जगत् के वास्तविक प्राणी के समान लगनेवाले हों।

८. संवाद संक्षिप्त, प्रवाहपूर्ण, स्वाभाविक और मितव्ययितापूर्ण हों।
९. यथासम्भव संकलन-त्रय का निर्वाह और रंचमंचीय गुण संयुक्त हो।
१०. कौतूहल और मनोरंजकता आरम्भ से अन्त तक विद्यमान हो।
११. अन्त प्रभावपूर्ण हो।

इस प्रकार एकांकी नाटक का अपना स्वरूप और अपनी विशेषताएँ हैं। यह नाटक का एक अंश नहीं, अपितु स्वतन्त्र नाट्य-विधा है।

एकांकी और नाटक

एकांकी, किसी नाटक का अलग किया एक अंक नहीं है, न उसका यह अंश या संक्षिप्त रूप है। एकांकी और नाटक में वही अन्तर है, जो अन्तर कहानी और उपन्यास में है। यदि बड़ा नाटक एक कुञ्ज है तो एकांकी एक स्तवक। नाटक में अनेक अंक होते हैं तो एकांकी में एक अंक, बड़ा नाटक अपने विस्तार के साथ अपने में पूर्ण होता है तो एकांकी अपनी संक्षिप्तता के साथ अपने में पूर्ण होता है। नाटक अनेक पात्रों के साथ अनेक घटनाओं को सँजोकर चलता है, उधर एकांकी दो-चार पात्रों के लिए केवल एक घटना की विद्युत् की नाईं चरम-सीमा पर पहुँचा देता है। नाटक में सम्पूर्ण जीवन या जीवन का विस्तृत भाग चित्रित होता है। एकांकी में जीवन का एक पहलू, जीवन की एक तरंगित घटना अथवा उसके उद्दीप्त क्षण का अंकन लेकर गठित होता है। साधारण नाटक गज या वृषभ की नाईं मन्थर गति से चलता है, एकांकी मृग के समान तीव्र गति से आँखों के सामने आता है और ओझल हो जाता है। नाटक के संवाद बड़े हो सकते हैं, उनमें पात्र, प्रदेश, पदार्थ या विचार का वर्णन हो सकता है; किन्तु एकांकी के संवाद छोटे और अर्थपूर्ण होते हैं जिनमें वर्णन का अभाव-सा रहता है। अत्यन्त आवश्यक वर्णन दो वाक्यों में संक्षेप में कर दिया जाता है। एकांकी में एक भी वाक्य अनावश्यक रूप में स्थान नहीं पाता है, वरन् व्यंजना को समेटे वाक्य, सिंह के समान आक्रमण करता है। नाटक में कौतूहल का प्रसार होता है और चरम-सीमा के पश्चात् भी नाटक अपनी तहें खोल सकता है। एकांकी में कौतूहल तुरन्त सामने आ खड़ा होता है और चरम-सीमा पर स्वप्न

की नाईं समाप्त हो जाता है। नाटक के अभिनय में कई घण्टे लगते हैं, जब कि एकांकी १५ मिनट से १ घण्टे की अवधि के भीतर समाप्त हो जाता है। नाटक और एकांकी के स्वरूप, शिल्प, आकार और गठन में अन्तर है।

एकांकी और कहानी

कलेवर की संक्षिप्तता को देखकर कुछ लोग एकांकी और कहानी को समान विधा समझने की भूल कर बैठते हैं। वास्तव में दोनों में कुछ तत्त्व समान रूप से हैं भी। संक्षिप्तता, एकांकी और कहानी का अनिवार्य तत्त्व है। केवल एक घटना का चित्रण दोनों में ही होता है। दोनों में कथात्मकता समान रूप से है। पात्र और संवाद भी दोनों के प्रमुख उपकरण हैं। इन समानताओं को देखकर अनेक विद्वानों ने कहानी और एकांकी को समान मान लिया है। प्रभाकर माचवे और दुर्गाशंकर मिश्र तत्त्वों की समानता के आधार पर दोनों को समान विधा ही मानते हैं। किन्तु सिद्धनाथकुमार के अनुसार, "यदि इन दोनों विधाओं की विभिन्नताओं पर ध्यान दिया जाये तो ज्ञात होगा कि इनमें साम्य से अधिक वैषम्य ही है। जैसे नाटक उपन्यास का रंगमंचीय संस्करण मात्र नहीं है, वैसे ही एकांकी कहानी का अभिनेय संस्करण मात्र नहीं है। इसका अपना स्वतन्त्र स्वरूप-विधान है, कहानी से भिन्न इसका अपना स्वतन्त्र शिल्प है।"

कहानी और एकांकी में ध्येय की भिन्नता प्रमुख है। कहानी का लेखक पाठक को ध्यान में रखकर लिखता है जब कि एकांकीकार, दर्शक और पाठक दोनों का ध्यान रखता है। कहानी में लेखक पाठक से सीधा सम्पर्क करता है जब कि एकांकी नाटककार का व्यक्तित्व पात्रों के माध्यम से ही दर्शक या पाठक तक पहुँच जाता है। कहानी एक पाठ्य-विधा है जब कि एकांकी पाठ्य और दृश्य दोनों ही। कहानीकार पात्रों के चरित्र की विशेषताओं का उद्घाटन स्वयं भी कर सकता है जब कि एकांकी के पात्रों की विशेषता, कार्यकलापों या अन्य पात्रों के संवाद द्वारा ही व्यक्त होती है।

एकांकी में घटनाएँ इस प्रकार चुनी जाती हैं कि वे रंगमंच पर प्रस्तुत की जा सकें; परन्तु कहानी में ऐसी कोई परिसीमा नहीं होती।

इन विभिन्नताओं के अतिरिक्त कहानी और एकांकी में एक सबसे बड़ा अन्तर है, संघर्ष अथवा द्वन्द्व का। कहानी में भी संघर्ष हो सकता है, होता है किन्तु एकांकी के लिए यह तो अनिवार्य तत्त्व है। बिना संघर्ष के एकांकी सफल नहीं हो सकता।

दूसरा बड़ा अन्तर है—विषय की परिध के संकोच का। कहानी में कोई भी विषय लिया जा सकता है। मानवेतर प्राणियों को भी पात्र के रूप में रखा जा सकता है जैसे, प्रेमचन्द की कहानी 'दो बैलों की जोड़ी' या पंचतन्त्र की कहानियों में प्रकृति का उपयोग भी पात्र के रूप में किया गया है, जैसे अज्ञेय की कहानियों—'जयदोल' और 'पठार का धीरज'—में। एकांकी में उन्हीं विषयों को लिया जा सकता है, जिन्हें मंच पर प्रस्तुत किया जा सके। इसलिए मानवेतर प्राणियों को पात्र के रूप में प्रमुखता से प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार जीवन की बहुत-सी घटनाएँ ऐसी हैं, जिन्हें मंच पर प्रस्तुत करना दुःसाध्य है।

इस प्रकार यदि सूक्ष्मता के साथ हम विचार करें तो पायेंगे कि कहानी और एकांकी में समानता तो केवल कथात्मकता और संक्षिप्तता की ही है, पर विभिन्नता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। कथात्मतका भी एकांकी के लिए ही अनिवार्य है, कहानी से कभी-कभी वह भी गायब हो जाती है, क्योंकि वातावरण-प्रधान कहानियाँ भी लिखी जाती हैं। अतः एकांकी और कहानी दो भिन्न विधाएँ हैं। इनमें से प्रत्येक की अपनी कला, रूप-विधा, सीमा और टेक्नीक है। प्रत्येक का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है।

एकांकी के प्रमुख तत्त्व

कथानक : अरस्तू ने नाटक में कथानक को सबसे अधिक महत्त्व दिया है। वास्तव में कथानक नाटक का प्राण है, जिसकी परिधि में पात्र गतिमान होते हैं। बिना कथानक के नाटक की रचना संभव नहीं। कथानक, संघर्ष को सँजोये आगे बढ़ता है। एकांकी में भी कथानक आवश्यक है, जिसके बिना एकांकी सम्यक् खड़ा नहीं रह सकता। हाँ, यह सम्भव है कि वह कथानक बहुत छोटा हो। ऐसे एकांकी

भी प्राप्त हैं, जिनके कथानक अत्यन्त लघु हैं तथा विचार बहुलता से बोझिल हैं। इनमें भी कुछ-न-कुछ कथनाक रहता ही है। निष्कर्षतः कथानक एकांकी का प्रधान तत्त्व है। वसफील्ड के मतानुसार कथानक वह कहानी है, जो लेखक के उद्देश्य के अनुरूप क्रमवद्धता एवं विस्तार प्राप्त करती है। एम० फॉस्टर के अनुसार, "कथानक घटनाओं का कालक्रमानुसार वर्णन है जिसमें कारण-कार्य-सम्बन्ध पर विशेष जोर रहता है।" डॉ० सिद्धनाथकुमार कथानक को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—"हम लेखकीय उद्देश्य को अभिव्यक्त करनेवाले द्वन्द्वयुक्त एवं कौतूहल, घटनाक्रम और पात्रसंयोजन को कथानक कह सकते हैं।"

एकांकी के लिए कथानक के चयन में एकांकीकार की अनुभूति ही प्रमुख आधार होती है। नाटककार की अनुभूति जितनी ही तीव्र और सच होगी, एकांकी उतना ही यथार्थ होगा। एकांकी के लिए जीवन का अध्ययन अपेक्षित है न कि साहित्य का। जीवन में चारों ओर बिखरी घटनाओं में से संघर्षपूर्ण किसी घटना का चयन कर उसे कौतूहल-सम्पन्न बनाकर एकांकी का रूप देना नाटककार की प्रतिभा पर निर्भर करता है। नाटककार की प्रतिभा का स्पर्श पाकर ही घटना, एकांकी के रूप में प्रतिफलित होती है।

एकांकी में विस्तार के लिए क्षेत्र कहाँ रखा है। अतः एकांकी में कथा को इस प्रकार सँवारा और सजाया जाता है कि एकाग्रता, उत्तेजना और उद्देश्योन्मुखता से सम्पन्न कथानक गठित हो जाय। जीवन का कोई भी एक क्षेत्र, इतिहास और साहित्य का कोई-सा एक कोना एकांकी में स्थान पा सकता है। एकांकी की कहानी का विषय ऐतिहासिक, पौराणिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, समस्याप्रधान अथवा रहस्यात्मक कोई भी हो सकता है, किन्तु उसमें यथार्थ का संयोजन आवश्यक है। वह विषय इस धरती पर विहार करता उछले-कूदे, अकाश में परियों के पंखों पर उड़ता न फिरे; एकांकी की कहानी के लिए आवश्यक है कि उसमें कार्यव्यापार घटित होता चले तथा उसकी गति में क्षिप्रता हो। मंच की सीमाओं में बँधकर वह चाहे जिधर घूमे, किन्तु उसके पाँवों में एक दिशा की ओर गमन करने का बंधन पड़ा रहता है। एकांकी के कथानक को तीन भागों में बाँटा गया है—आरम्भ, विकास और चरमोत्कर्ष या अन्त।

आरम्भ : एकांकी का प्रथम सोपान 'आरम्भ' है। इसमें एकांकी के पूर्व की घटनाओं का परिचय दिया जाता है जिसमें आगे की घटनाओं की जानकारी प्राप्त करने की आकांक्षा तीव्र होती जाती है।

विकास : यह एकांकी का वह भाग है जहाँ घटनाओं के घात-प्रतिघात से कौतूहल की वृद्धि होती है और संघर्ष तीव्र-से-तीव्रतर होता जाता है।

चरमोत्कर्ष : इस अंश में दर्शक का कौतूहल चरम-सीमा पर पहुँच जाता है और संघर्ष की स्थिति तीव्रतम स्थिति तक आ जाती है। यहाँ आकर एकांकी की समाप्ति हो जाती है। एकांकी का यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंश है और एकांकीकार की सफलता इसी बात से आँकी जाती है कि वह चरमोत्कर्ष को कितना प्रभावपूर्ण बना सका है। विष्णुप्रभाकर का कथन है, "वस्तुतः चरमोत्कर्ष में ही एकांकी की सफलता और उसका प्रभाव निहित है।" डॉ० राम-कुमार वर्मा इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं—"उसके कथानक का रूप तब हमारे सामने आता है जब आधी से अधिक घटना बीत चुकी होती है। इसलिए उसके प्रारम्भिक कार्य में ही कौतूल और जिज्ञासा की अपरिमित शक्ति भरी रहती है। बीती हुई घटनाओं की व्यंजना चुम्बक की भाँति हृदय को आकर्षित करती है। कथानक क्षिप्र गति से आगे बढ़ता है और एक-एक भावना, घटना को घनीभूत करते हुए गूढ़ कौतूहल के साथ चरम-सीमा में चमक उठता है।" कथानक में संघर्ष (बाह्य तथा आन्तरिक) भरा रहता है। कौतूहल और जिज्ञासा, इस संघर्ष के पीछे आँखमिचौनी करते हुए दौड़ते हैं। कौतूहल को लिये ही कथा, घटनाओं और कार्य-व्यापारों के माध्यम से चरम-सीमा पर पहुँचकर उद्घोष कर देती है कि "तमाशा खतम"। कथा के संयोजन में नाटककार आदर्श को भी क्षीरनीर की नाईं एकीभूत कर सकता है; किन्तु यथार्थ के धरातल को वह कभी नहीं छोड़ता है। पौराणिक पात्र भी यथार्थ जीवन पर आधारित होते हैं।

अन्विति-त्रय : कथानक में अन्विति-त्रय के निर्वाह पर भी बड़ा बल दिया गया है। अन्वितियाँ तीन हैं—काल, स्थान और कार्य। काल अन्विति का अर्थ है कि नाटक की घटना का एक निश्चित समयांश में समाप्त हो जाना। घटनाओं के घटने में या चरित्रों के प्रदर्शन में लम्बा अन्तराल नहीं होना चाहिए। दूसरी

अन्विति स्थान की है जिसका अभिप्राय है कि एकांकी की घटनाओं का क्षेत्र इधर-उधर बिखरा न हो वरन् सब घटनाएँ एक क्षेत्र या दायरे में सीमित रखी जायें। यदि एक घटना मद्रास में घटे और दूसरी श्रीनगर में अथवा एक घटना वायुयान में घटे और दूसरी नदी के स्टीमर में, उसे मंच पर प्रस्तुत करना कठिन होगा। अतः घटनाएँ एक स्थान पर घटित दिखाना उपयुक्त माना गया है। तीसरी अन्विति, कार्य की है जिस पर ध्यान देना सबसे अधिक आवश्यक है। एकांकी में नायक के एक ही कार्य को प्रस्तुत करना चाहिए। इस प्रकार एक सम्पूर्ण कार्य एक ही निश्चित समय में एक ही स्थान के दायरे में सम्पूर्ण हो तो अन्विति-त्रय का उत्तम निर्वाह माना जाता है। अन्विति-त्रय का उद्देश्य है, एकांकी में एकाग्रता को उत्पन्न करना। डॉ० रामकुमार वर्मा तीनों अन्वितियों के समावेश पर जोर देते हैं। उधर कुछ विद्वानों का मत है कि तीन न भी हों तो दो या एक अन्वितियों का निर्वाह आवश्यक है। गोविन्ददास, कार्य और काल की अन्वितियों को प्रतिष्ठित करने के पक्ष में हैं। विष्णुप्रभाकर का मत है कि "मेरी अपनी राय में एकांकी में कार्य-व्यापार की एकता अनिवार्य है; देश और काल की नहीं। वस्तुतः अन्विति-त्रय की पुकार उस काल की पुकार है, जब रंगमंच के निर्माण में कठिनाइयाँ रहती थीं।" श्री कैनेथ मैकगोवान केवल भाव-अन्विति पर ही जोर देते हैं। संक्षेप में हम एकांकी के लिए निम्न विशेषताएँ आवश्यक मानते हैं :

१. कथानक का वास्तविक होना चाहिए।

२. विश्वसनीयता उसके लिए अनिवार्य है।

३. कथानक में प्रभाव की एकता अत्यन्त आवश्यक है।

४. कौतूहल और जिज्ञासा कथानक की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। एकांकी के प्रथम वाक्य से कौतूहल आरम्भ होना चाहिए और अन्त तक जिज्ञासा को बनाये रखना आवश्यक होता है।

५. अन्विति-त्रय का पालन भी एकांकी की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

६. कथानक को आदि से अन्त तक रोचक होना चाहिए। रोचकता के

अभाव में कथानक सफल नहीं हो सकता। दर्शक का मन उबानेवाला विच्छिन्न कथानक एकांकी के लिए वांछनीय नहीं कहा जा सकता।

७. कथानक का आरम्भ अप्रत्याशित और आकर्षक हो।

पात्र

कथानाक धरातल है तो पात्र वे ईंटें हैं, जिनसे एकांकी का सदन प्रस्तुत होता है। जिस प्रकार अनावश्यक घटना या प्रसंग को एकांकी में स्थान नहीं है, उसी प्रकार अत्यन्त आवश्यक पात्रों का ही एकांकी में समावेश किया जाता है, एक भी अनावश्यक पात्र को इसमें स्थान नहीं। चार-पाँच या छह पात्रों का संयोजन एकांकी में पर्याप्त माना जाता है। यद्यपि अधिक पात्रोंवाले एकांकी भी मिलते हैं, किन्तु अधिक पात्रों के साथ चरित्र की एकाग्रता का संयोजन विरले नाटककार ही कर पाते हैं। एकांकी में नायक तो होता ही है, प्रतिनायक का भी समावेश किया जा सकता है। शेष गौण पात्र नायक के चरित्र को ही विकसित करते हैं। प्रतिनायक भी नायक के ऊपर प्रक्षिप्त प्रकाश को तीव्र करता है।

पात्र चार प्रकार के हो सकते हैं :

१. उत्तेजक : जो कथा के विकास को उत्तेजित करते हैं, जैसे रामकुमार वर्मा के 'रूप की बीमारी' में डॉक्टर।

२. माध्यम : जो गौण पात्र नायक के मनोभावों को प्रकट कराने में सहायता करते हैं या माध्यम बनते हैं, 'अधिकार-लिप्सा' एकांकी में प्रयाग सिंह माध्यम है।

३. सूचक : कथा-वस्तु के रहस्य को प्रकट करनेवाले पात्र सूचक हैं, जैसे 'सोहाग-बिन्दी' में डॉक्टर सूचक है।

४. प्रभाव-व्यंजक : ऐसे पात्र कहीं-कहीं उपस्थित होकर प्रभाव उत्पन्न करते हैं। इनका उपस्थित होना रहस्यमय संकेत के समान होता है, जैसे 'स्ट्राइक' में नवयुवक।

पात्रों के आधार पर एकांकी को तीन वर्गों में रखा गया है :

१. ऐसे नाटक, जिनमें नायक और प्रतिनायक दोनों होते हैं।

२. वे नाटक, जिसमें केवल नायक और गौण पात्र होते हैं।

३. वे नाटक, जिनमें नायक, प्रतिनायक और गौण पात्र तीनों होते हैं।

पात्र इसी जगत् के हाड़, मांस के पुतले होते हैं। उनका चरित्र मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित किया जाता है। पात्रों में गतिशीलता होती है जो जीवन में जूझते हुए, ऊबड़-खाबड़ भूमि पर तीव्र गति से लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं। उनके चरित्र का निर्माण, उनके संस्कार, मनोविज्ञान और वातावरण के अनुसार होता है। उनका द्वन्द्व (बाह्य और आन्तरिक) कुशलता से पिरोया जाता है। नाटककार को अन्तर्द्वन्द्व के अंकन में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है। वस्तुतः पात्रों का चरित्र-चित्रण, एकांकीकार के पैने निरीक्षण, व्यापक अनुभव और मनोवैज्ञानिक विशेषताओं की पकड़ पर निर्भर करता है। पात्रों का वास्तविक और विश्वसनीय होना आवश्यक है। तभी दर्शक उनसे वास्तविक तादात्म्य स्थापित कर सकता है।

पात्र-रचना के विषय में डॉ० रामकुमार वर्मा चार बातों की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहते हैं :

१. पात्र वास्तविक हों, कभी-कभी आत्मा या प्रेतात्मा जैसे वास्तविक पात्र भी अवतरित किये जाते हैं, जैसे 'उत्सर्ग' नाटक में छायादेवी की आत्मा का यंत्र में उभरना।

२. पात्रों में जनता को आकर्षित करने की क्षमता हो।

३. पात्रों की रचना मनोवैज्ञानिक आधार पर हो।

४. नाटक में पात्रों की संख्या सीमित हो।

संवाद

भरतमुनि ने संवाद (पाठ्य) को नाटक का प्रथम तत्त्व माना है, क्योंकि नाटक की कल्पना ही संवादरूप में हो पाती है। संवाद के बिना नाटक का अस्तित्व ही संभव नहीं। संवाद ही नाटक की आत्मा है। संवादों के ही द्वारा पात्रों का चरित्र और उनके मनोभाव प्रकट होते हैं। कथा-सूत्र भी तो संवादों के द्वारा ही विस्तार पाता है। एकांकी की सफलता और प्रभावकारिता, प्रधान-रूप से प्रवहमान सजीव संवादों पर ही निर्भर करती है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने एकांकी के संवादों में निम्न विशेषताओं को आवश्यक बताया है :

१. संक्षिप्तता : एकांकी के संवादों में अनावश्यक बातों के लिए स्थान नहीं। वहाँ तो एक वाक्य, एक शब्द भी अनावश्यक नहीं होना चाहिए। संक्षिप्त संवाद की दृष्टि से डॉ० रामकुमार वर्मा का 'आँखों का आकाश' पठनीय है।

२. वाग्वैदग्ध्य : संवाद मर्मस्पर्शी वाग्वैदग्ध्यपूर्ण होना चाहिए। डॉ० रामकुमार वर्मा के 'चारुमित्रा' और 'तिष्यरक्षिता' के संवाद वाग्वैदग्ध्यपूर्ण हैं।

३. चरित्रांकन : संवाद में चरित्र की चारित्रिकता को प्रकट करने की क्षमता होनी आवश्यक है।

४. संवाद : एकांकी के कथासूत्र को आगे बढ़ाने में समर्थ होनेवाला होना चाहिए।

५. संवाद केवल वाद-विवाद के रूप में न हो। यदि कहीं ऐसा होना आवश्यक ही हो तो वाद-विवाद कलात्मक रीति से होना चाहिए। जैसे भगवतीचरण वर्मा कृत 'सबसे बड़ा आदमी' में वाद-विवाद-पूर्ण संवाद की रचना कलात्मक रीति से हुई है।

६. एकांकी के संवादों में व्याख्यान-उपदेश आदि के लिए स्थान नहीं होता है।

७. स्वगत, आज के नाटकों में अस्वाभाविक समझा जाता है यद्यपि प्राचीन नाटकों में पात्र के विचारों के आरोह-अवरोह, अन्तर्द्वन्द्व या मानसिक विकारों को व्यक्त करने के लिए स्वगत कथन का अधिकाधिक प्रयोग प्रचलित था। अधिक आवश्यक होने पर दो-चार पंक्तियों का स्वगत-कथन रखा जा सकता है।

८. संवाद सरल और स्पष्ट होना चाहिए। रहस्यपूर्ण संवाद रसानुभूति में प्रायः बाधक हो जाता है। भुवनेश्वर के नाटकों में प्रायः यह दुरूहता पायी जाती है।

९. संवाद पात्रों के भावों को प्रकट करने की क्षमता रखनेवाला होना चाहिए।

संवाद का प्रधान गुण स्वाभाविकता है। संवादों का गठन पात्र की जाति; गुण, कर्म, स्वभाव, मनोवृत्ति तथा कथा की प्रकृति के अनुसार होना चाहिए। संवाद जितने सरल, सुबोध, प्रभावपूर्ण और लघु होंगे, उनमें जितनी मार्मिकता

और व्यंजकता भरी जायेगी, एकांकी उतना ही सफल बनेगा। संवादों के ही माध्यम से एकांकी का कार्य-व्यापार अग्रसर होता है। संवादों का छोटा और प्रवाहपूर्ण होना एकांकी के प्रभाव में वृद्धि करता है। एकांकी में वातावरण का निर्माण भी सबल संवादों द्वारा होता है। संक्षिप्त, सारगर्भित, सरस, पात्रानुकूल तथा प्रवहमान संवाद एकांकी में चार चाँद लगा देते हैं। एक अनावश्यक शब्द भी संवाद में स्थान न पा सके, इसका ध्यान यदि एकांकीकार रखता है तो वह अपने नाटक को श्रेष्ठता प्रदान करता है। लम्बे संवादों को एकांकी में स्थान नहीं मिलना चाहिए, क्योंकि ये कार्य-व्यापार को शैथिल्यता देते हैं तथा दर्शकों को उबाते हैं। डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल सफल संवाद का लक्षण देते हुए कहते हैं—' वस्तुतः सफल और कलात्मक कथोपकथन ही के द्वारा पाठक-दर्शक नाटक की स्थितियों से अपना तादात्म्य स्थापित कर सकता है और वह साधारणीकरण की भूमिका पर पहुँच पाता है। पात्रों के सम्बन्ध में जो स्थान चरित्र-मनोविज्ञान का है, वही कथोपकथन के प्रसंग में वाक्-चातुर्य और सम्भाषण की स्वाभाविकता का है।''

संवाद का महत्त्व नाटक के अंग के रूप में ही है। यदि वह एकांकी की प्रयोजन-सिद्धि में सहायक नहीं होता है तो सुन्दर-से-सुन्दर संवाद भी निरर्थक होता है।

देश-काल

प्रत्येक घटना किसी निश्चित स्थान में और किसी विशिष्ट समय पर ही सम्पन्न होगी, अतः नाटक के समान एकांकी में भी देश-काल का महत्त्व है। किंतु नाटक के समान एकांकी की घटना या घटना-श्रृंखला में अनेक देशों या स्थानों को तथा विभिन्न कालों (दिनों-महीनों-वर्षों) को प्रश्रय नहीं दिया जाता। इसीलिए कार्य-अन्विति के साथ स्थान और काल-अन्वितियों का संयोजन एकांकियों में महत्त्वपूर्ण बन गया। देश-काल का अर्थ केवल स्थान और समय ही नहीं है, वरन् "रीति-रिवाज, रहन-सहन के ढंग, पात्रों की वेष-भूषा, उनके शिष्टाचार, आचार-व्यवहार, विचार-चिन्तन, संवाद की भाषा-शैली तथा कथा की प्राकृतिक

पृष्ठभूमि आदि सभी वातें आ जाती हैं, जो कथा को स्वाभाविकता प्रदान करती हैं।" एकांकी की दृश्य-योजना, पात्रों की वेश-भूषा, संवाद-शैली, पात्रों के व्यवहार आदि सव पर देश-काल का प्रभाव दृष्टिगत होता है। ऐतिहासिक एकांकी में देश-काल को अधिक महत्त्व मिलता है; क्योंकि देश-काल के अनुसार पात्रों की वेश-भूषा, आचार-व्यवहार, वोलचाल-पद्धति न होने से एकांकी हास्यास्पद रूप ले लेता है; वैसे तो देश-काल का ध्यान सभी एकांकियों में रखा जाता है। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई पात्रों की पूजा-प्रणाली, अभिवादन-शैली, उत्सव, विवाह-पद्धति भिन्न-भिन्न हैं, एकांकी में इसका ध्यान रखना ही होगा। यूरोप और भारत के त्यौहार भिन्न हैं और उनके मनाने का ढंग भी भिन्न है। युग, जाति और देश-विशेष की कथावस्तु के अनुसार ही देश-काल का विधान, एकांकी में किया जाता है और तदनुरूप दृश्यविधान होता है। एकांकियों में देश-काल का यह प्रभाव सर्वत्र लक्षित होगा। देश-काल की पृष्ठभूमि में स्थापित पात्र, उसका संवाद, उसका वातावरण, उसकी वेश-भूषा, उसका आचार-व्यवहार ही दर्शक को विश्वसनीय और यथार्थ प्रतीत होगा।

भाषा-शैली

एकांकी में भावाभिव्यक्ति के कई साधन उपलब्ध किये जाते हैं, जैसे भाव-भगिमा, वेश-भूषा, दृश्यविधान आदि; किन्तु सवलतम साधन पात्र की भाषा है। एकांकी सभी स्तर और सभी प्रकार के लिए दर्शकों के लिए लिखे जाते हैं अतः इसकी भाषा सहज, सरल, सुगम और सामान्य-जन की भाषा होती है। किन्तु सामान्य होते हुए भी भाषा में साहित्यिक और काव्य-कल्पना का अभाव नहीं होता है। साहित्यिकता का अतिरेक कहीं उसे क्लिष्ट और वोझिल न वना दे, इसका ध्यान एकांकीकार को रखना पड़ता है। किसी पात्र के कथन को दुवारा सुनने का अवसर दर्शक को नहीं मिलता है, अतः नाटक की भाषा सरल और वोधगम्य होनी चाहिए जिससे कि दर्शक तुरन्त अर्थ-ग्रहण करने में समर्थ हो सके। सहजता और सरलता के साथ वह साहित्यिक और वैदग्ध्यपूर्ण हो सकती है। आयरिश नाटककार सिंज ने अपने नाटकों में अधिकांशतः उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया है, जो उसके ग्रामीण अंचल में वोले जाते हैं।

भाषा के द्वारा ही पात्र का चरित्र प्रकट होता है अतः चरित्र-चित्रण का साधन भी भाषा ही है। एक पात्र स्वर को सुनकर दुसरे को पहचान जाता है। पात्र की भाषा से उसकी शिक्षा, सभ्यता, उदारता, साहस आदि का ज्ञान हो जाता है। फलतः नाटककार पात्र की भाषा पर ध्यान रखता है और चारित्रिक गुणों के अनुसार उससे भाषा का प्रयोग करता है। शिक्षित और अशिक्षित, मूर्ख और विद्वान्, सभ्य और गँवार, ग्रामीण और नागरिक की भाषा में अन्तर होता ही है। नाटककार भी इस अन्तर को भाषा में रखता है।

'शैली ही व्यक्ति है' (Style is the man.) प्रसिद्ध उक्ति है। कवि हो या नाटककार, आलोचक हो या उपन्यासकार, निवन्धकार हो या भाष्यकार— उसकी एक शैली होती है जो भाषा में अभिव्यक्त होती है। प्रसाद और सेठ गोविन्ददास दोनों नाटककार हैं, किन्तु दोनों की शैली में बड़ा अन्तर है। वही अन्तर डॉ० रामकुमार वर्मा और भुवनेश्वर में प्राप्त होता है यद्यपि दोनों एकांकी-कारों की भाषा हिन्दी है। शैली, नाटककार को अभ्यास द्वारा अर्जित होती है जिसमें उसकी प्रतिभा, शिक्षा, रुचि और अध्ययन गुम्फित रहता है। एक एकांकीकार व्यञ्जना और व्यंग्य को अधिक अपनाता है तो दूसरा अभिधा और सामान्य भाषा को; एक अलंकारों को अधिक सजाता है तो दूसरा विचारों को, एक भाषणात्मक शैली अपनाता है तो दूसरा घरेलू वार्तालाप की शैली को।

उद्देश्य

जीवन में प्रत्येक कार्य का कोई उद्देश्य होता है। एकांकी रचना के पीछे भी एकांकीकार का उद्देश्य छिपा होता है। यद्यपि मनोरंजन प्रदान करना एकांकी का प्रथम उद्देश्य है, किन्तु केवल मनोरंजन मात्र के लिए उच्च-कोटि के एकांकी का निर्माण नहीं होता। जीवन और जगत् के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए वह एकांकी की रचना करता है। नाटककार जीवन में जिस अनुभूति से प्रभावित होता है, जो विचार उसे आलोड़ित करता है, जो व्यक्ति या समस्या उसे प्रेरित करती है, उसे सचाई से व्यक्त करना ही उसका उद्देश्य रहता है। जीवन का वास्तविक चरित्र एकांकीकार की सफलता है। उपन्यास-

कार और कहानीकार स्वयं उपस्थित होकर अपनी बात कह देता है। अपने पात्र का परिचय देता है, अपने विचारों को रखता है और रुचि-अभिरुचि व्यक्त कर देता है। किन्तु नाटककार अथवा एकांकीकार पात्रों के माध्यम से ही सब कुछ कहता है। उसके विचार और भाव, उसकी दृष्टि और रुचि, उसका ज्ञान और जीवन-दर्शन सब पात्रों द्वारा ही व्यक्त होता है। एकांकी को वह किस उद्देश्य की ओर ले जाना चाहता है, यह उसे पात्रों के माध्यम से ही अभिव्यक्त करना पड़ता है। पात्रों को माध्यम बनाकर नाटककार दर्शकों को प्रेरणा प्रदान करता है, उन्हें विचारमय या भावसम्पन्न बनाकर उद्देश्य सिद्ध करता है। एकांकीकार की सफलता जीवन को प्रेरित कर उसे उठा सकने में निहित है। महात्मा गाँधी को सत्य हरिश्चन्द्र नाटक से सत्यारूढ़ होने की प्रेरणा मिली थी।

रंग-संकेत

एकांकी का रंगमंच से अटूट सम्बन्ध है। एकांकी वास्तव में रंग-एकांकी है जो रंग के लिए निर्मित हुआ है। फलतः नाटककार एकांकी में रंग-संकेत देता जाता है, जिसके आधार पर उसका अभिनय होता है। वैसे तो संस्कृत के एकांकी नाटकों में भी रंग-संकेत मिलते हैं, किन्तु वे नगण्य हैं। वहाँ दो-तीन शब्दों में प्रकट किये गये हैं, जैसे कि देखकर (विलोक्य); चारों तरफ देखकर (समन्तादवलोक्य); कान लगाकर (कर्णं दत्वा), अँगुली से इशारा करते हुए (अंगुल्या दर्शयन्ती), हर्ष-पूर्वक सहसा उठकर (सहर्षं सहसोत्थाय), उसकी ओर दोनों हाथ फैलाकर (तन्मुखाभिमुखं हस्तौ प्रसार्य)। किन्तु आज का नाटककार अपने नाटकों तथा एकांकियों में विस्तृत रंग-संकेत देता है। यह पश्चिमी प्रभाव माना जायेगा।

कहा जाता है अंग्रेजी-साहित्य में नाटक को उपन्यास-जैसा पाठ्य बनाकर पाठकों के क्षेत्र-विस्तार के उद्देश्य से व्यापक रंग-संकेत लिखने का अभियान चलाया गया। आधुनिक लेखकों ने उसे आधुनिकता की साध पूरी करने के लिए फैशन के रूप में अपनाया।

किन्तु डॉ० रामकुमार वर्मा का मत है कि नाटकीय रंग-संकेतों का जन्म

अभिनेताओं और दिग्दर्शकों की सुविधा के लिए हुआ है। ये रंगसंकेत-मंच पर नाटककार के उद्देश्यों को भली-भाँति हृदयंगम कराने में सहायक होते हैं।

डॉ० रामकुमार वर्मा के अनुसार नाटकोय संकेतों के निम्न लक्ष्य होते हैं :

१. इनकी रचना रंग-भूमि की व्यवस्था के लिए होती है। रंगमंच के भवन अथवा कमरों के वर्णन में भुवनेश्वर सिद्धहस्त हैं।

२. ये अभिनय में सहायता करते हैं। नाटककार बीच-बीच में पात्रों के हाव-भाव, वेष-भूषा, उठने-बैठने, चलने की रीति, भाव-भंगी आदि का उल्लेख कर देते हैं, जैसे 'लापरवाही', 'घबड़ाकर', 'एकाएक उठकर', 'दौड़कर', 'उदास-मुद्रा' में आदि। इससे अभिनेता, पात्रों की अवस्था को समझकर उन्हीं के अनुसार अभिनय करते हैं।

३. नाटकीय संकेतों की रचना, पात्रों की रूप-कल्पना में भी सहायता पहुँचाने के लिए होती है। जैसे—रामकुमार वर्मा के एकांकी 'रजनी की रात' में।

४. रंग-संकेत, कथावस्तु के दुरूह एवं विस्तृत स्थलों को स्पष्ट एवं संक्षिप्त रूप में चित्रित कर देते हैं, जिससे एकांकी में प्रवाह एवं सजीवता आती है।

५. कथावस्तु के उन तत्त्वों का चित्रण करते हैं जिनकी अभिव्यक्ति न तो कथोपकथन द्वारा हो सकती है और न किसी अन्य नाटकीय प्रयत्न से ही हो सकती है। श्री जैनेन्द्र के 'टकराहट' में इसका उदाहरण देखा जा सकता है।

एकांकी नाटकों में विस्तृत रंग-संकेत केवल आधुनिकता का परिवेश उत्पन्न करने हेतु नहीं रखे जाते, वरन् रंग-संकेतों के प्रयोग में नाटककार का कुछ उद्देश्य निहित होता है। रंग-संकेत अभिनेता और दिग्दर्शक दोनों को सुविधा प्रदान करते हैं। इनसे एकांकी के पढ़ने में पाठक को अधिक सरलता और सजीवता का बोध होता है। लेखक एकांकी-निर्माण के समय मानसिक नेत्र से मंच को देखता है और रंग-संकेत लिखता है। फलतः दिग्दर्शक और अभिनेता इन रंग-संकेतों को ग्रहण करके अभिनय में प्रवेश करते हैं।

एकांकी का वर्गीकरण

अनेक विद्वानों ने एकांकी का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है। श्री अमरनाथ गुप्त ने विभिन्न आधारों पर एकांकियों के १२ भेद माने हैं—

(१) समस्यामूलक एकांकी, (२) फैंटेंसी एकांकी, (३) प्रहसन एकांकी, (४) सीरियस 'गम्भीर एकांकी', (५) लक्ष्य-प्रधान एकांकी, (६) मेलोड्रैमेटिक एकांकी, (७) सुखांत एकांकी, (८) ऐतिहासिक एकांकी, (९) व्यंग्यात्मक एकांकी, (१०) हारलेकिनेड एकांकी, (११) काकनी एकांकी और (१२) सामाजिक एकांकी।

इन सबके उदाहरण श्री अमरनाथ गुप्त ने अंग्रेजी एकांकियों से दिये हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा इस वर्गीकरण को मौलिक नहीं मानते और डॉ० सिद्धनाथ-कुमार इसे अवैज्ञानिक स्वीकारते हैं।

डॉ० नगेन्द्र ने एकांकियों के सात प्रकार माने हैं—

(१) सुनिश्चित टेकनिकवाले एकांकी, (२) संवाद या संभाषण, (३) मोनो-ड्रामा, (४) फीचर, (५) फैंटेंसी, (६) झाँकी और (७) रेडियोप्ले।

डॉ० सत्येन्द्र ने एकांकियों को पाँच वर्गों में विभक्त किया है—

१. प्रकार की दृष्टि से विभक्त एकांकी : (अ) मध्यवर्ती एकांकी, (ब) गौण-प्रधान एकांकी, (स) अलौकिक एकांकी, (द) संक्षिप्त एकांकी और (य) उपसर्गीय एकांकी।

२. विषय की दृष्टि से विभक्त एकांकी : (अ) सामाजिक, (ब) ऐतिहासिक, (स) राजनैतिक और (द) चारित्रिक आदि।

३. शैली की दृष्टि से विभक्त एकांकी : (अ) सीधी-सादी शैलीवाले एकांकी, (ब) व्यंग्यात्मक एकांकी, (स) हास्यपूर्ण एकांकी, (द) गम्भीर एकांकी, (य) बौद्धिक तथा काव्यात्मक एकांकी, (र) समस्यामूलक एकांकी और (ल) दुःखान्त तथा सुखान्त एकांकी।

४. मूलवृत्ति की दृष्टि से विभक्त एकांकी : (अ) आलोचक एकांकी जो दो प्रकार के हो सकते हैं : विवेकवान और भावुक, (ब) समस्या एकांकी, (स) अनुभूतिमय एकांकी और (द) व्याख्यामूलक एकांकी।

५. वाद की दृष्टि से विभक्त एकांकी : (अ) यथार्थवादी, (ब) आदर्शवादी (स) प्रगतिवादी आदि।

डॉ० सिद्धनाथकुमार ने रचना-पद्धति के आधार पर पाँच प्रकार बताये हैं :

१. एक दृश्य एकांकी, २. अनेक दृश्य एकांकी, ३. भूमिका उपसंहारवाले एकांकी, ४. प्रवक्ता (नैरेटर) वाले एकांकी और ५. एकपात्री एकांकी।

माध्यम के आधार पर डॉ० सिद्धनाथकुमार ने पाँच भेद और किये हैं। वे ये हैं :

१. रंग एकांकी, २. पाठ्य एकांकी, ३. रेडियो एकांकी, ४. टेलीविजन एकांकी और ५. फिल्म एकांकी।

रूप के आधार पर डॉ० सिद्धनाथकुमार ने एकांकियों को चार वर्गों में बाँटा है : १. गद्य एकांकी, २. काव्य एकांकी, ३. गद्य-पद्य मिश्रित एकांकी और ४. संगीत एकांकी।

अनेक आधार और अनेक दिशाओं को ग्रहण कर बनाये गये ये वर्ग अत्यधिक और अनावश्यक रूप से विस्तृत और अतिव्याप्त हैं। वास्तव में एकांकी का समुचित वर्गीकरण दो आधारों पर करना ही हमें युक्तिसंगत है। ये दो आधार हैं : विषय और शैली या शिल्प।

विषयगत वर्गीकरण

१. सामाजिक : डॉ० रामकुमार वर्मा का 'दस मिनट', सेठ गोविन्ददास का 'कंगाल नहीं', 'ईद और होली', उपेन्द्रनाथ अश्क का 'विदा', 'आदि मार्ग', जगदीशचन्द्र माथुर का 'रीढ़ की हड्डी', उदयशंकर भट्ट का 'सेठ लाभचन्द', चन्द्रकिशोर जैन का 'कानून', लक्ष्मीनारायण मिश्र का 'एक दिन'।

२. पौराणिक : सद्गुरुशरण अवस्थी का 'मुद्रिका', उदयशंकर भट्ट का 'आदिम युग', 'मनु-मानव'।

३. सांस्कृतिक : डॉ० रामकुमार वर्मा का 'प्रतिशोध', 'भारत का भाग्य'।

४. राजनीतिक : सेठ गोविन्ददास का 'हंगर स्ट्राइक', उदयशंकर भट्ट का 'एक ही कब्र', 'पिशाचों का नाच'।

५. चारित्रिक द्वन्द्व-प्रधान : डॉ० रामकुमार वर्मा का 'चारुमित्रा', 'उत्सर्ग', 'रेशमी टाई', सेठ गोविन्ददास का 'धोखेबाज', एस० पी० खत्री का 'बन्दर की खोपड़ी'।

६. यथार्थवादी : सेठ गोविन्ददास का 'सुदामा के तंदुल', 'मानव-मन', 'यू नों', फाँसी', गणेशप्रसाद द्विवेदी का 'सोहाग-बिन्दी'।

७. ऐतिहासिक : डॉ० रामकुमार वर्मा का 'पृथ्वीराज की आँखें' 'शिवाजी', 'दीपदान', जगदीशचन्द्र माथुर का 'भोर का तारा', सेठ गोविन्ददास का 'आलोक और भिखारिणी', सुदर्शन का 'राजपूतनी की हार', उग्र का 'अफजल खाँ वध', उदयशंकर भट्ट का 'समुद्रगुप्त का पराक्रमांक', वृन्दावनलाल वर्मा का 'जहाँदार शाह', 'कश्मीर का काँटा'।

८. मनोविश्लेषणात्मक : भुवनेश्वर का 'शैतान', 'ऊसर', 'अश्क का पापी' गणेशप्रसाद द्विवेदी का 'दूसरा उपाय ही क्या है', 'शर्मा जी', 'पर्दे का ऊपरी पार्श्व', सर्वस्व समर्पण', उदयशंकर भट्ट का 'उन्नीस सौ पैंतीस', सेठ गोविन्ददास का 'स्पर्धा'।

९. दार्शनिक : डॉ० रामकुमार वर्मा का 'अन्धकार', जैनेन्द्रकुमार का 'टकराहट'।

१०. राष्ट्रीय : विष्णुप्रभाकर का 'माँ-बाप', अविनाशचन्द का 'देश-रक्षा के लिए।'

शैलीगत वर्गीकरण

दूसरा विभाजन है शैली या शिल्पगत, जो विषयगत विभाजन से अधिक महत्त्वपूर्ण है। शैलीगत एकांकी निम्न प्रकार के होते हैं :

१. रंग-एकांकी, २ एकपात्री एकांकी, ३. भावनाट्य (फैंटेसी), ४. प्रतीकात्मक एकांकी, ५. रेडियो एकांकी।

१. रंग-एकांकी : हिन्दी के अधिकांश एकांकी इसी के अन्तर्गत आते हैं। रंग-एकांकी से तात्पर्य उन एकांकियों से है जो रंगमंचीय होते हैं। ये एकांकी मंचीय सीमाओं को देखकर लिखे जाते हैं, अतः इनमें अन्वितियों का निर्वाह भी किया जाता है। डॉ० रामकुमार वर्मा के 'रेशमी टाई', 'औरंगजेब की आखिरी रात', 'चारुमित्रा', कौमुदी-महोत्सव'; 'कलंक-रेखा', 'पृथ्वीरज की आँखें', 'एक तोले अफीम की कीमत,' 'चम्पक', 'सही रास्ता', 'परीक्षा' आदि

रंग-एकांकी ही हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क के एकांकी 'अधिकार का रक्षक', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'चौराहे', 'पक्का गाना', 'पर्दा उठाओ—पर्दा गिराओ', 'साहब को जुकाम' आदि ऐसे ही एकांकी हैं।

२. एकपात्री एकांकी : स्वोक्ति एकांकी इनका दूसरा नाम है। इनमें केवल एक पात्र किसी वस्तु या व्यक्ति को लक्ष्यकर आदि से अन्त तक कथन करता है। वह रूप बदलकर मंच पर आ सकता है। मंच पर इसका अभिनय कठिन कार्य होता है और सिद्धहस्त अभिनेता ही इसमें सफलता पाता है। सेठ गोविन्ददास के 'शाप और वर', 'सच्चा जीवन', 'अलबेला' 'प्रलय और सृष्टि' एकपात्री-एकांकी हैं, 'अलबेला' में एक व्यक्ति घोड़े को सम्बोधित कर साहूकारों, जमींदारों और शोषकों के विरुद्ध अपने विचार व्यक्त करता है। 'प्रलय और सृष्टि' में एक पात्र चश्मा, नोट-बुक, कलम, टावर, घंटा, चिमनी, बादल, धरती आदि को सम्बोधित कर समाज और जन-प्रवृत्तियों की आलोचना करता है।

३. भावनाट्य (फैंटेसी) : यह कल्पना-प्रधान रोमानी एकांकी है जिसमें जीवन के किसी अमूर्त कथा को आधार बनाकर कोई रोमानी चित्रण किया जाता है। यह चित्रण भावुकता से भरा होता है। डॉ० रामकुमार वर्मा का 'बादल की मृत्यु' भावनाट्य का उदाहरण है।

४. प्रतीकात्मक एकांकी : इसमें किसी गूढ़, संश्लिष्ट भाव-बिन्दु, समभक्त कथा-सत्य के उद्घाटन के लिए किसी व्यक्ति, पशु-पक्षी या पदार्थ को प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया जाता है। डॉ० धर्मवीर भारती का 'नीली झील' तथा विष्णु-प्रभाकर का 'दृष्टि की खोज' प्रतीकात्मक एकांकी के उदाहरण हैं।

५. रेडियो एकांकी : इन्हें ध्वनि एकांकी भी कहा जाता है। रेडियो पर प्रसारित होने के लिए जो एकांकी लिखे जाते हैं, जिनमें ध्वनि, स्वर और शब्द को अधिक महत्त्व दिया जाता है, उन्हें रेडियो एकांकी नाम दिया जाता है। रेडियो एकांकी में निम्न विशेषताएँ प्राप्त होती हैं :

(क) रेडियो एकांकी अन्विति-त्रय के बन्धन से मुक्त होता है।

(ख) इसमें कुछ दृश्य रहते हैं। दृश्य-परिवर्तन का आभास संगीत या वाद्यध्वनि द्वारा किया जाता है।

(ग) इसका मूलाधार ध्वनि है। ध्वनि का प्रयोग तीन रूपों में प्राप्त होता हैं—भाषा, ध्वनि और संगीत।

(घ) इसकी अवधि दस मिनट से १ घण्टे तक की हो सकती है, किन्तु अधिकांश रेडियो एकांकी १५ से ३० मिनट तक की अवधिवाले होते हैं।

(ङ) पात्रों की संख्या कम होती है।

(च) कार्य-व्यापार, पृष्ठभूमि, वातावरण आदि का आभास ध्वनि-प्रभावों से ही कराया जाता है।

रेडियो एकांकी के भेद

१. रेडियो एकांकी, २. रेडियो रूपक, ३. कल्पनारंजित रूपक या फैंटेसी, ४. प्रहसन, ५. झलकी, ६. एकपात्री नाटक या स्वोक्ति रूपक ७. रेडियो नाट्य रूपान्तर।

१. रेडियो एकांकी : यह एक दृश्य का भी होता है और अनेक दृश्यों का भी। एक दृश्य दो पंक्तियों का भी हो सकता है और कई पृष्ठों का भी। रंग एकांकियों को भी रेडियो पर प्रसारित किया जाता है। दृश्य-परिवर्तन वाद्य-यंत्र-ध्वनि से आभासित किया जाता है। उदाहरण, विष्णुप्रभाकर के 'बीमार', 'क्रान्ति', 'कांग्रेस मैन बनो', 'हमारी स्वाधीनता-संग्राम', 'भारत छोड़ो'।

२. रेडियो रूपक : रेडियो रूपक, रेडियो की एक विशिष्ट देन है। इसमें वास्तविक घटना का नाटकीय प्रस्तुतीकरण किया जाता है। रेडियो रूपक में उद्घोषक होता है जो तथ्यों को सामने रखता जाता है। कभी-कभी दो उद्घोषकों (एक पुरुष तथा एक महिला) द्वारा इसे प्रसारित किया जाता है। ये एक रूपक डाकुमेंट्री फिल्म के समान होते हैं जो दिखाये नहीं जाते हैं, वरन् सुनाये जाते हैं। उदाहरण : डॉ० रामकुमार वर्मा का 'ज्यों-की-त्यों धरि दीन्हीं चदरिया', 'भरत का भाग्य', 'स्वागत है ऋतुराज', हरिश्चन्द्र खन्ना का 'नीली खेड़ी'।

३. फैंटेसी (या कल्पनारंजित रेडियो एकांकी) : वास्तविक जगत् से उठकर कल्पना के चमत्कारों का प्रदर्शन इस विधा में किया जाता है। उदाहरण : भारतभूषण का 'अजन्ता की गूँज', सिद्धनाथ का 'अभिशप्त'।

४. प्रहसन : मनोरंजन देने के लिए जो एकांकी रेडियो के लिए लिखे जाते हैं और रेडियो से प्रसारित होते हैं वे रेडियो प्रहसन हैं। प्रतिदिन विविध भारती से इनका प्रसारण होता है।

५. झलकी : हास्य-विनोद-भरी छोटी नाटिकाएं ही झलकियाँ हैं। आकाशवाणी से 'इन्द्र-धनुष', 'रंग-तरंग', 'झलकियाँ' आदि के अन्तर्गत ये रचनाएँ प्रसारित होती हैं। उदाहरण : विष्णुप्रभार का 'रसोईघर में प्रजातन्त्र'।

६. काव्यनाटक : प्रारम्भ से अन्त तक पद्य में प्रस्तुत होनेवाले लघु नाटक, काव्य नाटक हैं। उदाहरण : भगवतीचरण वर्मा का 'द्रौपदी', नरेश मेहता का 'अग्निदेवता', सिद्धनाथकुमार का 'सृष्टि की साँझ'।

७. संगीत रूपक : संगीत-प्रधान रूपक जिनमें गीतों की प्रधानता होती है, संगीत रूपक हैं। इसमें एक या दो वक्ता इसे प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण : गिरिजाकुमार माथुर का 'इन्दुमती', 'दीपशिखा', 'मेघ की छाया', उदयशंकर भट्ट का 'एकला चलो रे', आरसीप्रसाद सिंह का 'धूप-छाँह', हंसकुमार तिवारी का 'मेघदूत', 'कच-देवयानी', इसका एक अन्य रूप 'संगीतिका' भी है जिसमें संगीत की प्रधानता होती है। उदाहरण : जानकीवल्लभ शास्त्री का 'गंगावतरण', पाषाणी'।

८. एकपात्री नाटक : (मोनोलॉग) इसमें पात्र स्वरों के आरोह-अवरोह से, क्रोध, हास्य, घृणा आदि भावों को व्यक्त करता हुआ स्वगतकथन करता जाता है। उदाहरण : मुद्राराक्षस का 'दशहत', विष्णुप्रभाकर का 'नये-पुराने'।

९. रेडियो नाट्य रूपान्तर : किसी नाटक, उपन्यास या कहानी को रेडियो एकांकी के रूप में जब रेडियो से प्रसारित किया जाता है तो वह रेडियो नाट्य रूपान्तर है। प्रसादजी के सभी नाटक तथा प्रेमचन्दजी के उपन्यास इस रूप में प्रसारित हो चुके हैं।

हिन्दी एकांकी का उद्भव और विकास

अंग्रेजी में एकांकी का पर्याय 'वन ऐक्ट प्ले' है जिसका अर्थ एक अंक का नाटक है। आवश्यकता ने एक अंक के नाटक (वन ऐक्ट प्ले) को जन्म दिया। अंग्रेजी-साहित्य में एकांकी नाटक का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। वैसे तो कुछ लोग यूनान के प्राचीन नाटककार एचिलस, सोफोक्लीज आदि के सुखान्त नाटकों को भी एक अंक में लिखित होने के कारण एकांकी की संज्ञा प्रदान करते हैं जैसा कि हिन्दी के आलोचकों ने संस्कृत तथा भारतेन्दु के एक अंकवाले नाटकों को एकांकी माना है। अंग्रेजी में मध्यकाल में धार्मिक प्रचार हेतु लिखे गये 'मिस्ट्री' और 'मिरेकिल' नाटकों को भी इस श्रेणी में रखने का प्रयास हुआ है। यूरोप के गाँवों में उत्सवों के अवसर पर 'पटोमाइस' नाटक भी प्रायः एकांकी के रूप में ही खेले जाते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में एकांकियों का प्रयोग बड़े नाटकों से पहले नाट्य-गृहों में जल्दी आ जानेवाले दर्शकों के मनोरंजन के लिए 'कर्टनरेजर' के रूप में और दुःखान्तकी के प्रभाव को कम करने के लिए बड़े नाटकों के अन्त में 'आफ्टर पीसेज' के रूप में होता था। सन् १९०३ के अक्तूबर में वेस्ट एण्ड लन्दन में डब्ल्यू० डब्ल्यू० जैकब की कहानी 'बन्दर का पंजा' का एकांकी नाट्य रूपान्तर कर्टनरेजर (पट उत्थानक) के रूप में खेला गया। यह लघु नाटक इतना प्रभावपूर्ण सिद्ध हुआ कि दर्शक मुख्य नाटक को देखे बिना ही रंगशाला से निकल गये। उन दिनों रंगशालाओं में यह चलन था कि मुख्य नाटक के प्रदर्शन के पहले रंगशाला के प्रबन्धक, दर्शकों के मनोरंजन के लिए छोटे-छोटे नाटकों का प्रदर्शन करने लगे थे जिन्हें कर्टनरेजर (पट-उत्थानक) कहते थे। इन छोटे नाटकों के खेलने का बहुत कुछ उद्देश्य यह होता था कि जब तक संभ्रान्त दर्शक आवें और अपना स्थान ग्रहण करें तब तक आगन्तुक दर्शकों की ऊब मिटाने के लिए कुछ मनोरंजन दिया जाये। धीरे-धीरे पट-उत्थानकों (कर्टन-रेजर) ने अपना स्वगत आसन ग्रहण कर लिया और ये बड़े लोकप्रिय हो गये। बाद में एकांकी ने अपना विशेष रूप ग्रहण कर लिया तथा नाटक-साहित्य में एकांकी का अच्छा विकास हुआ।

हिन्दी-साहित्य में आज एकांकी नाटक से भी अधिक सफल विधा बन गयी है। आज का दर्शक रात्रि में ४-५ घण्टे जागकर अनेकांकी नाटक देखना पसन्द नहीं करता। एकांकी उसकी मनोरंजन की आकांक्षा की तुष्टि एकाध घंटे में कर देता है। शिक्षा-संस्थाओं, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक समारोहों में तथा सांस्कृतिक प्रदर्शनों के अवसर पर आजकल अधिकतर एकांकी ही अभिनीत होते हैं, क्योंकि यह थोड़े समय में आवश्यक मनोरंजन प्रस्तुत कर देता है। पत्र-पत्रिकाओं में भी लेख, कविता, कहानियों के साथ एकांकी को स्थान प्राप्त होता है। फलतः हिन्दी-जगत् में अपने एकांकी का विकास बड़ी तीव्रता से हो रहा है। एकांकी की एक विधा रेडियो एकांकी ने तो और अधिक समृद्धि पायी है और साहित्याकाश को नाप डाला है।

आधुनिक हिन्दी नाटक का जनक कौन है, इस पर सभी एकमत हैं और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को इसका श्रेय प्रदान करते हैं। किन्तु हिन्दी का प्रथम एकांकी किसे स्वीकार किया जाये; इस पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। डॉ० नगेन्द्र 'प्रसादकत्व के गहरे रंग की विद्यमानता' तथा 'प्रसाद पर संस्कृत के प्रभाव' को स्वीकार करते हुए भी प्रसाद को ही हिन्दी एकांकी का जन्मदाता मानते हैं और उनके 'एक घूँट' को हिन्दी का प्रथम एकांकी घोषित करते हैं। डॉ० नगेन्द्र का अभिमत है :

"सचमुच हिन्दी एकांकी का प्रारम्भ प्रसाद के 'एक घूँट से ही हुआ है। प्रसाद पर संस्कृत का प्रभाव है। इसलिए वे हिन्दी एकांकी के जन्मदाता नहीं कहे जा सकते। यह बात मान्य नहीं। एकांकी की टैकनीक का 'एक घूँट' में पूरा निर्वाह है।" डॉ० रामचरण महेन्द्र यद्यपि भारतेन्दुकालीन लघु नाटकों को संस्कृत-परम्परा से जुड़े हिन्दी एकांको स्वीकार करते हैं; किन्तु नयी शैली का वास्तविक हिन्दी एकांकी 'एक घूँट' को ही मानते हैं। डॉ० दशरथ ओझा, डॉ०हरदेव बाहरी, पं० सद्गुरुशरण अवस्थी, डॉ०सत्येन्द्र तथा प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त भी 'एक घूँट' को ही प्रथम एकांकी मानने के पक्ष में हैं। दूसरी ओर डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल और विष्णुप्रभाकर जैसे एकांकी-मर्मज्ञ डॉ० रामकुमार वर्मा को आधुनिक हिन्दी एकांकी का जन्मदाता मानते हैं तथा उनके एकांकी 'बादल की

मृत्यु' (१९२९ ई०) को प्रथम एकांकी घोषित करते हैं। श्री अमरनाथ गुप्त, डॉ० रामकुमार वर्मा को हिन्दी-साहित्य में सर्वप्रथम एकांकी लेखक स्वीकार करते हैं, क्योंकि डॉ० वर्मा के एकांकी आधुनिक ढंग के हैं। श्री रामनाथ सुमन भी डॉ० रामकुमार वर्मा को एकांकी का जन्मदाता और उनके 'बादल की मृत्यु' को हिन्दी का प्रथम एकांकी घोषित करते हैं।

कुछ विद्वानों के अनुसार प्रथम एकांकीकार होने का गौरव भुवनेश्वरप्रसाद को है। उपेन्द्रनाथ अश्क का मत है : "हिन्दी का पहला एकांकी किसे माना जाय, इस सम्बन्ध में मतभेद है। सन् १९३५ में भुवनेश्वरप्रसाद के एकांकी नाटकों का संग्रह 'कारवाँ' प्रकाशित हुआ जो शायद हिन्दी का पहला एकांकी संग्रह है। उनके नाटक 'स्ट्राइक' और 'ऊसर' बहुत प्रसिद्ध हुए। 'कारवाँ' में छह एकांकी संगृहीत थे। इन एकांकियों पर पश्चिमी नाटकों का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगोचर होता है जिसे स्वयं लेखक ने भी स्वीकार किया है। 'कारवाँ' के एकांकियों में सब कुछ विदेशी है"—जीवन-दर्शन, सामाजिक-मूल्य, रंगशिल्प, वेश-भूषा और आत्मा।" उधर डॉ० सिद्धनाथकुमार, सुदर्शन के एकांकी 'छाया' को हिन्दी का प्रथम एकांकी मानते हुए कहते हैं : "यदि अनेक दृश्यवाले किसी एकांकी को आधुनिक शैली का प्रथम नाटक मानना है तो सुदर्शन लिखित 'छाया' (१९२५ ई०) को सरलता से माना जा सकता है।

भारतेन्दु-युग में हिन्दी एकांकी का जन्म हुआ, इस मत के पोषक विद्वान् भी हैं। भारतेन्दु ने एक अंकवाले अनेक लघु नाटकों की रचना की है। कहीं उन्होंने 'एकांकी' शब्द का प्रयोग तो नहीं किया है; किन्तु एक अंकवाले नाटकों को जन्म दिया। उनके नाटक 'पाखण्ड-विडम्बन', 'धनंजय-विजय', विषस्य विषमौषधम्', 'भारत-दुर्दशा,' 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति', 'अंधेर नगरी', 'नील देवी', 'प्रेम-योगिनी' आदि को एकांकी के अन्तर्गत रखा गया है। भारतेन्दुजी का 'विषस्य विषमौषधम्' नाटक संस्कृत-परम्परा का रूपक 'भाण' है, इसे भी एकांकी माना गया है। भारतेन्दुजीकृत छोटे नाटकों—'नील देवी', 'भारत-दुर्दशा', 'अंधेर नगरी', 'प्रेम-योगिनी' के अंकों को दृश्य मानकर इन नाटकों को

भी एकांकी के अन्तर्गत स्थापित किया गया है। राधाचरण गोस्वामीकृत १५ दृश्यवाले नाटक 'अमरसिंह राठौर' (१८९५ ई०) को, प्राचीन संस्कृत नाट्य-शैली को अपनाकर लिखा गया। राधाचरण गोस्वामी के भारी भरकम नाटक 'दमयंती-स्वयंवर' (१८९५ ई०) को, अव्यवस्थित कथानकवाले प्रतापनारायण मिश्र के नाटक 'कलिकौतुक रूपक' (१८८६ ई०) को भी हिन्दी एकांकी के क्षेत्र में प्रतिष्ठित किया गया। अन्य छोटे-बड़े नाटक देवकीनन्दन त्रिपाठीकृत 'रुक्मिणी-परिणय' (१८७६ ई०), राधाकृष्णदासकृत 'महारानी पद्मावती'(१८८२ ई०) और 'महाराणा प्रताप' (१८९७ ई०), श्रीनिवासदासकृत 'प्रह्लाद-चरित' (१८८९ ई०),कार्तिकप्रसाद खत्रीकृत 'उषाहरण' (१८९१ ई०) भी एकांकी के खेमे में ढकेल दिये गये हैं। श्रीनिवासदासकृत 'रणधीर प्रेम-मोहिनी' (१८७७ ई०) को भी एकांकी के आसन पर प्रतिष्ठित किया गया है। यद्यपि यह नाटक चार-पाँच घण्टे में अभिनीत होगा, किन्तु इन्हें एकांकी नहीं माना जा सकता। तब क्या भारतेन्दु-काल में एकांकी का बीजारोपण नहीं हो गया था! भारतेन्दु-काल में एक ऐसा भी एकांकी प्राप्त होता है जो आधुनिक एकांकी शिल्प की दृष्टि से एकांकी के निकट है।

काशीनाथ खत्री का नाटक 'गुन्नौर की रानी' (१८८४ ई०) आधुनिक एकांकी के सभी तत्त्वों में परिपूर्ण है। फलतः हम इसे हिन्दी का प्रथम एकांकी मान सकते हैं। यह ठीक है कि विकसित एकांकी-कला का सम्पूर्ण सौन्दर्य इसमें नहीं मिलता, किन्तु एकांकी दृष्टि से यह हीन नहीं है और 'एक घूँट' की अपेक्षा एकांकी के तत्त्व हमें अधिक लक्षित होते हैं। 'एक घूँट' तो हिन्दी एकांकी का दूसरा मोड़ है, एकांकी-पथ का प्रथम मील का पत्थर 'गुन्नौर की रानी' से ही प्रारम्भ होता है।

हिन्दी एकांकी-पथ का दूसरा मोड़ सन् १९२९ में आया। प्रसादजी के 'एक घूँट' की रचना सन् १९२९ में हुई। डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी 'बादल की मृत्यु' की रचना सन् १९२९ में की यद्यपि इसका प्रकाशन सन् १९३० ई० में हुआ। प्रसादजी का एकांकी 'एक घूँट' भारतेन्दु-कालीन 'गुन्नौर की रानी' की शृंखला से ही जुड़ा है। एक ओर इसमें सुखान्त प्रवृत्ति है तो दूसरी ओर

विवाह एवं प्रेम की समस्या, तीनों अन्वितियाँ, विचार-संघर्ष और आधुनिक रंग-संकेत भरे पड़े हैं। इस एकांकी ने हिन्दी की ऐतिहासिक कथा-शृंखला को आगे बढ़ाया। सन् १९३५ में भुवनेश्वर का 'कारवाँ' संग्रह प्रकाशित हुआ और यही (१९३५–३७ ई०) डॉ० रामकुमार वर्मा के एकांकी-संग्रह के प्रकाशन का समय है।

हिन्दी एकांकी को सही दिशा देने का सर्वाधिक श्रेय 'हंस' के एकांकी विशेषांक को है, जिसका प्रकाशन मई १९३८ में हुआ था। इस विशेषांक में हिन्दी के आठ तथा प्रान्तीय भाषाओं के चार एकांकी प्रकाशित हुए। इस अंक में प्रकाशचन्द्र गुप्त का 'एकांकी नाटक' नामक निबन्ध भी छपा जिसमें न केवल तब तक के प्रकाशित हिन्दी एकांकियों का लेखा-जोखा और समीक्षा ही प्रस्तुत की गयी थी; वरन् हिन्दी के एकांकी-साहित्य में एक नये युग के सूत्रपात की घोषणा भी की गयी थी।

इसी अंक में चन्द्रगुप्त विद्यालंकार का एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें विद्यालंकारजी ने एकांकी को कहानी का एक छोटा संस्करण बताया। उपेन्द्रनाथ अश्क तथा श्रीपतराय ने इसका विरोध किया और एकांकी की स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की। एकांकी-सम्बन्धी यह विवाद आगे भी चला। इसमें एकांकी-लेखन को, मार्गदर्शन और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। अब तो हिन्दी का एकांकी-साहित्य अत्यन्त विकसित और समृद्ध हो चुका है। इस युग के जीवन की व्यस्तता ने साहित्य की लघु विधाओं—कहानी और एकांकी को पल्लवित किया है। रेडियो के आविष्कार ने तो हिन्दी एकांकी-क्षेत्र में एक क्रान्ति-सी ला दी है। अल्प समय में मनोरंजन की माँग, मंचीकरण की सुविधा तथा रेडियो ने एकांकी नाटक के विकास को तीव्रता प्रदान की है।

हिन्दी के आधुनिक एकांकीकारों में डॉ० रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट, भुवनेश्वर, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्दवल्लभ पन्त, सद्‌गुरुशरण अवस्थी, वृन्दावनलाल वर्मा, गणेशप्रसाद द्विवेदी, जगदीशचन्द्र माथुर, रामवृक्ष बेनीपुरी, भगवतीचरण वर्मा, विष्णुप्रभाकर,

एस० पी० खत्री, देवेन्द्रनाथ शर्मा, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायणलाल, सत्येन्द्र शरत्, पृथ्वीनाथ शर्मा, गोपीनाथ तिवारी, विनोद रस्तोगी, जयनाथ 'नलिन', भारतभूषण अग्रवाल, विश्वम्भर 'मानव', कर्तारसिंह दुग्गल, सिद्धनाथ-कुमार, विमला लूथरा, देवराज दिनेश, अमृतलाल नागर आदि प्रमुख हैं। इन एकांकीकारों ने रंगमंच और रेडियो ही के लिए एकांकी लिखे हैं।

आधुनिक हिन्दी एकांकीकारों में डॉ० रामकुमार वर्मा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जिन्होंने हिन्दी-साहित्य की इस विधा को काफी समृद्ध किया है। 'पृथ्वीराज की आँखें', 'रेशमी टाई', 'रजनी की रात', 'चारुमित्रा', 'कदम्ब या विष', 'ऋतुराज', 'सप्तकिरण', 'कौमुदी-महोत्सव', 'रजतरश्मि', 'दीपदान', 'कामकंदला' आदि प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ० वर्मा के एकांकियों में भावुकता और बौद्धिकता का अत्यन्त सुन्दर सामंजस्य हुआ है। डॉ० वर्मा के एकांकी प्रधानतया ऐतिहासिक हैं जो यथार्थ के धरातल पर खड़े होकर आधुनिक समस्याओं की ओर दृष्टिपात करते हैं। इनके सामाजिक एकांकियों में मध्यवर्गीय समाज का वास्तविक चित्रण है। कौतूहल-पूर्ण कथानक इनके एकांकियों का प्रधान वैशिष्ट्य है। सेठ गोविन्ददास ने भी पर्याप्त (लगभग ७०) एकांकी लिखे हैं। 'पंचभूत', 'एकादशी' 'स्पर्धा', 'सप्तरश्मि', 'अष्टदल' आदि आपके प्रमुख एकांकी-संग्रह हैं। सेठजी ने सामाजिक, राजनीतिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक आदि प्रायः सभी विषयों पर एकांकियों की रचना की है। सेठजी के एकांकियों में एक-पात्री एकांकियों का विशिष्ट महत्त्व है। 'प्रलय और सृष्टि', 'अलबेला', 'शाप और वर', 'सच्चा जीवन', ऐसे ही एकांकी हैं जिनमें आरम्भ से अन्त तक एक ही पात्र कार्य करता है और बोलता जाता है। हाँ, वह कुछ वस्तुओं या व्यक्तियों को सम्बोधित करता है। संस्कृत की भाण-शैली का यह नवीन रूप है। कुछ एकांकियों में (षड्दर्शन) उपक्रम और उपसंहार को स्थान मिला है! श्री उपेन्द्रनाथ अश्क ने भी हिन्दी-नाट्य-जगत् को अनेक एकांकी अर्पित किये हैं। अश्कजी का प्रथम एकांकी-संग्रह 'देवताओं की छाया में' १९३८ ई० में प्रकाशित हुआ था। तब से 'चरवाहे', 'पक्का गाना', 'पर्दा उठाओ—पर्दा गिराओ', 'साहब को जुकाम है,' 'पाँच पर्दे' आदि अनेक एकांकी-संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं जिनमें

पचासों रंगमंचीय एकांकियां ने स्थान पाया है। अश्कजी के एकांकी सामाजिक, राजनीतिक हैं, जिनमें अनेक समस्याओं ने सिर उठाया है। अश्कजी के इन एकांकियों में भावना की सुन्दर धारा प्रवाहित है। पं० उदयशंकर भट्ट ने भी बड़ी संख्या में (लगभग ६५) एकांकियों का निर्माण किया है। भट्टजी के दो एकांकी 'असहयोग और स्वराज्य' तथा 'चितरंजनदास' १९२२-२३ के हैं, किन्तु इनमें एकांकी का रूप निखरा नहीं है। आगे भट्टजी की एकांकी-कला में प्रांजलता आती गयी। भट्टजी का प्रथम प्रकाशित एकांकी 'दुर्गा' है जो 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ था। भट्टजी के एकांकी सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक हैं तथा इनमें विभिन्न शिल्प (हास्य-व्यंग्य, भावनाट्य, नाट्य-रूपक, प्रतीक-रूपक, ध्वनि-रूपक) के दर्शन होते हैं। भट्टजी को भावनाट्य में विशेष सफलता मिली।

जगदीशचन्द्र माथुर ने सन् १९३७ में प्रकाशित 'भोर का तारा' से प्रसिद्धि प्राप्त की। यह एक सशक्त रचना है। सन् १९४७ में इसके साथ अन्य एकांकी मकड़ी का जला, कलिंग-विजय, खंडहर, रीढ़ की हड्डी सम्मिलित कर 'भोर का तारा' तथा अन्य एकांकी नाम से आपका एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुआ। 'ओ मेरे सपने', 'घोंसले', 'खिड़की की राह', 'कबूतरखाना', 'भाषण' आदि आपके अनेक एकांकी-संग्रह हिन्दी-नाटच-जगत् में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। माथुरसाहब के एकांकियों का प्राणतत्त्व 'व्यंग्य' है। लेखक ने स्वयं इन्हें 'नटखट एकांकी' कहा है। इन एकांकियों ने रंगमंच पर बड़ी सफलता प्राप्त की है। भाषा का स्वाभाविक प्रवाह, काल के सभी एकांकियों में प्रवाहित है।

पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र समस्याप्रधान तथा ऐतिहासिक नाटकों के प्रणेता के रूप में हिन्दी-जगत् में प्रसिद्धि पा चुके हैं। एकांकी के क्षेत्र में जहाँ मिश्रजी ने ऐतिहासिक एकांकी लिखे, वहाँ सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक एकांकियों की भी रचना की है जिनमें समस्या ऊपर उठकर सामने आ खड़ी होती है। आपके एकांकी-संग्रह हैं—'अशोक-वन', 'प्रलय के पंख पर', कावेरी में कमल', 'भगवान् मनु तथा अन्य एकांकी' आदि। विष्णुप्रभाकर रेडियो एकांकीकार के रूप में पर्याप्त प्रसिद्धि अर्जित कर चुके हैं। आपके 'सीमारेखा', 'रक्तचन्दन',

'उपचेतना का छल' आदि कई एकांकियों ने वड़ी लोकप्रियता प्राप्त की है। विष्णु-प्रभाकर के एकांकी-संग्रह हैं—'इन्सान', 'क्या वह दोषी था', 'प्रकाश और परछाईं', 'वारह एकांकी', 'दस वजे रात', 'आन्तरिक द्वन्द्व' आदि। यशस्वी उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा का एकांकी 'सवसे वड़ा आदमी' सहसा सामने आया और उसने प्रसिद्धि प्राप्त की। इसका चुभता व्यंग्य तीखी मार करता है। वर्माजी के अन्य एकांकी हैं—'दो कलाकार', 'चौपाल में', 'वुझता दीपक, किन्तु ये सभी एकांकी 'सवसे वड़ा आदमी' के समान प्रभावपूर्ण न वन पाये।

आधुनिक एकांकीकारों में श्री लक्ष्मीनारायणलाल ने अपना विशिष्ट स्थान वना लिया है। आपने रंगमंच की विभिन्न तकनीकों का अध्ययन कर हिन्दी एकांकी को एक नयी दिशा दी है। आपने सामाजिक नाटकों में विभिन्न रंगमंचीय प्रयोग किये हैं।

रंगमंच के विकास के साथ-साथ हिन्दी एकांकी भी विकसित होता जा रहा है और जीवन के सूक्ष्म अन्तर्द्वन्द्वों तथा संघर्षों को रंगमंच पर अवतरित करने का प्रयास कर रहा है। साहित्य-जगत् में नाटक के पश्चात् एकांकी ने अपना गौरवपूर्ण स्थान वना लिया है।

सहायक सामग्री

१. दि वन ऐक्ट प्ले ऑफ टुडे — सं० विलियम कोज लैन्को
२. हिन्दी-साहित्य-कोश, भाग १ तथा २ — डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
३. आधुनिक हिन्दी नाटक — डॉ० नगेन्द्र
४. हिन्दी एकांकी : उद्‌भव एवं विकास — डॉ० रामचरण महेन्द्र
५. ए प्राइमर ऑफ प्ले राइटिंग — केनेथ मैंकगोवन
६. रीसेण्ट वन ऐक्ट प्ले — ए० ई० एम० वेलिस
७. एकांकी-कला — डॉ० रामकुमार वर्मा
८. हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास — डॉ० दशरथ ओझा
९. हिन्दी एकांकी की शिल्प-विधि का विकास — डॉ० सिद्धनाथकुमार
१०. नीली झील — सं० विष्णुप्रभाकर
११. हिन्दी-साहित्य का इतिहास — रामचन्द्र शुक्ल
१२. हिन्दी एकांकी — डॉ० सत्येन्द्र
१३. चारुमित्रा — डॉ० रामकुमार वर्मा
१४. नाटक बहुरूपी — डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल
१५. पचीस श्रेष्ठ एकांकी — उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

औरङ्गज़ेब की आख़िरी रात



डॉ० रामकुमार वर्मा

[१९०५ ई०]

पात्र-परिचय

आलमगीर औरंगज़ेब : मुगल सम्राट्

ज़ीनत-उन्निसा बेगम : आलमगीर औरंगज़ेब की पुत्री

करीम : एक सिपाही,
हक़ीम और क़ातिब

स्थान : अहमदनगर का किला

समय : १८ फरवरी, सन् १७०७
रात्रि के ३ बजे।

[बीजापुर और गोलकुण्डा की शिया रियासतों पर विजय प्राप्त करने के बाद जब औरंगज़ेब ने मराठों का अन्त करने का निश्चय किया तो उन्हें अपनी असफलता स्पष्ट दीख पड़ने लगी।

उन्होंने जब छत्रपति शिवाजी के पुत्र शम्भाजी को सपरिवार बन्दी कर लिया और उनके सामने इस्लाम-धर्म में दीक्षित होने का प्रस्ताव रक्खा, तो शम्भाजी ने घृणा के साथ प्रस्ताव को ठुकराते हुए औरंगज़ेब के प्रति अत्यन्त कटु शब्दों का व्यवहार किया।

फलस्वरूप शम्भाजी बड़ी निर्दयता के साथ क़त्ल किये गये। उनके क़त्ल होते ही मराठों में क्रान्ति की ज्वाला भड़क उठी। सत्रह वर्षों तक भयंकर संघर्ष होता रहा। इधर मुग़ल-सेना दिनों-दिन विलासी बन रही थी। फलस्वरूप प्रत्येक लड़ाई में उसे बहुत अधिक हानि उठानी पड़ती थी।

सन् १७०६ में औरंगज़ेब ने देखा कि उसकी सेना अब अत्यन्त विशृंखलित और आलसी हो गयी है : राज्य की आर्थिक दशा भी चिन्ताजनक हो रही है। लड़ाई की हानि 'जजिया' कर से भी पूरी नहीं हो रही है। जलालुद्दीन अकबर के समय से संचित आगरा और दिल्ली के किलों की समस्त सम्पत्ति दक्षिण की लड़ाइयों में समाप्त हो चुकी है; तीन-तीन महीनों से सिपाहियों और सिपहसालारों का वेतन नहीं दिया गया है।

राज्य की इस दुर्व्यवस्था के साथ वे अब वृद्ध हो गये हैं। पहले-जैसी शक्ति अब उनके शरीर में नहीं रही। उनका विजय-स्वप्न निराशा में तिरोहित हो चला है। उनकी चिन्ताएँ उन्हें चैन नहीं लेने देतीं। अन्त में हताश होकर अहमदनगर लौट आये हैं।

इस समय वे अहमदनगर के क़िले में बीमार पड़े हुए हैं। उनका शरी टूट चुका है। उन्हें ज्वर और खाँसी है। इस समय उनकी अवस्था ८९ वर्ष की है। एक साधारण-से पलंग पर लेटे हुए हैं। सिरहाने सफेद रेशम का तकिया है, जिसके दोनों बाजुओं में ज़री की हल्की पट्टियाँ हैं।

वे एक सफेद रेशम की चादर कमर तक ओढ़े हुए हैं। दुबला-पतला शरीर, कटी-छटी सफेद दाढ़ी। नाक लम्बी, किन्तु वृद्धावस्था के कारण कुछ झुकी हुई। वे सफेद लम्बा कुरता पहने हुए हैं, जो रेशमी तनी से दाहिने कन्धे पर कसा हुआ है। गले में मोतियों की एक बड़ी माला पड़ी हुई है जिसके मध्य में एक बड़ा नीलम जड़ा है। हाथ में तसबीह है।

आलमगीर की मुख-मुद्रा अत्यन्त मलीन और पश्चात्ताप से परिपूर्ण है। उनके दाहिनी ओर एक सुसज्जित पीठिका पर उनकी पुत्री ज़ीनत-उन्निसा बेगम बैठी हुई है। उसकी आयु ४० वर्ष के लगभग है। देखने में सौम्य और आकर्षक। वह नीले रंग की रेशमी सलवार और प्याज़ी रंग की ओढ़नी से सुसज्जित है। गले में रत्नों की माला है और कमर में मोतियों की पेटी कसी हुई है। उसके मुख पर भी भय और आशंका की रेखाएँ अंकित हैं।

कमरे में कोई विशेष सजावट नहीं है, किन्तु सारे वायुमण्डल में एक पवित्रता है। पलंग के सिरहाने दो शमादान जल रहे हैं। दूसरी ओर केवल एक है, जिससे आलमगीर की आँखों में चकाचौंध न हो। पलंग के दाहिनी ओर ज़ीनत-उन्निसा की पीठिका के समीप ही एक बड़ी खिड़की है, जिससे हवा का मन्द झोंका आ रहा है। उससे घने अन्धकार के बीच में आकाश के तारे दिखायी पड़ रहे हैं।

आलमगीर के सामने कोने की ओर सोने के पिंजड़े में एक पक्षी बैठा हुआ है जो कभी-कभी अपने पंख फड़फड़ा देता है। पलंग से कुछ हटकर सिरहाने की ओर एक तिपाई है जिस पर दवा की शीशियाँ रखी हुई हैं। उसके समीप एक ऊँचे स्टैण्ड पर लम्बे मुँहवाली सोने की सुराही है, जिसमें गुलाबजल रखा हुआ है। उसके पास ही एक सोने का प्याला रेशमी कपड़े से ढँका हुआ है।

[परदा उठने पर आलमगीर कुछ क्षणों तक बेचैनी से खाँसते हैं, फिर एक गहरी और भारी साँस लेकर शून्य की ओर देखते हुए ज़ीनत से कहते हैं :]

आलम : खाँसी एक लमहे के लिए नहीं रुकती''''कोई दवा उसे नहीं रोक सकती, ज़ीनत ! कोई दवा उसे नहीं रोक सकती''''यह मौत की आवाज़ है। इसे कौन रोक सकता है? (फिर खाँसते हैं।) मौत की आवाज़।

ज़ीनत : (धैर्य के स्वरों में) नहीं, जहाँपनाह ! आपकी खाँसी बहुत जल्द अच्छी हो जायेगी। हकीमों ने''''

आलम : (बीच ही में) हकीमों ने''''हकीमों ने कुछ नहीं समझा। कुछ नहीं समझा उन्होंने। यह खाँसी कोई मर्ज नहीं है, बेटी ! यह खाँसी सल्तनत के उखड़ने की आवाज है, जो हमारे दम के साथ उखड़ना चाहती है। (मुँह बिगाड़कर) उखड़े। कहाँ तक रोकेंगे हम ? (खाँसते हैं।) कितने बलवाइयों को नेस्त-नाबूद किया, कितने ग़दर रोके, लेकिन''''लेकिन यह खाँसी नहीं रुकती, बेटी ! रुके भी कैसे ? (शिथिल स्वरों में) अब आलमगीर, आलमगीर नहीं है।

ज़ीनत : नहीं, जहाँपनाह ! आज भी हिन्दुस्तान और दकन आपके इशारे पर बनता और बिगड़ता है। आपके तेवर देखकर अफ़गानिस्तान भी घुटने टेकता है। राजपूत; जाट, मराठे और सिख आज भी आपसे लोहा नहीं ले सकते।

आलम : लेकिन शिवाजी ले सकता था। हमारी थोड़ी-सी लापरवाही से वह हाथ से निकल गया। उसकी वजह से ज़िन्दगीभर परेशान रहा। लेकिन था बहादुर और दिलेर····खैर, 'काफ़िर बजहन्नुम रफ़्त' (खाँसते हैं।) उसका बेटा शम्भाजी····(रुक जाते हैं और गहरी साँस लेते हैं।)

ज़ीनत : छोड़िए इन बातों को, जहाँपनाह ! ये बातें इस वक्त दिल और दिमाग़ दोनों को खराब करनेवाली हैं। आप जैसे ही अच्छे होंगे····

आलम : (बीच ही में) अब अच्छे नहीं हो सकते, ज़ीनत ! चन्द घड़ियों की ज़िन्दगी ! कौन जाने कब खामोशी आ जाये ! लेकिन, बेटी ! हमने एक दिन भी आराम नहीं किया (खाँसते हैं।), एक दिन भी नहीं। राजपूत-जैसी क़ौम पर हुकूमत करना जिन्दगी का आराम नहीं, सबसे बड़ी मेहनत है। मराठों की हिम्मत पस्त करना ज़िन्दगी का सबसे बड़ा करिश्मा है—वह हमने किया, बेटी ! वह हमने किया। लेकिन अब····अब हम कमजोर हो गये हैं। अब कुछ नहीं कर सकेंगे। (ठण्डी साँस लेकर कलमा पढ़ते हैं।) ला इलाह इललिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह····

ज़ीनत : आप सब कुछ कर सकेंगे, जहाँपनाह ! अच्छा, अब आप यह खाँसी की दवा खा लीजिए (दवा देने के लिए उठती है।), हकीमसाहब दे गये हैं।

आलम : (तीव्र स्वर में) क्या हकीमसाहब खुद नहीं आये ?

ज़ीनत : आये थे। बड़ी देर तक आपका इन्तज़ार करते रहे। आप होश में नहीं थे। वे थोड़ी देर के लिए बाहर चले गये हैं। उन्होंने अभी फिर आने को कहा है।

आलम : जो दवा वे दे गये हैं, वह उन्हें चखायी गयी थी ? (खाँसते हैं।)

ज़ीनत : जी, मैंने भी चखी थी। दवा में किसी तरह का शक नहीं है।

आलम : यह अहमदनगर है, बेटी ! शिया रियासत बीजापुर और गोलकुण्डा

के करीब। दुश्मनी, दोस्ती में छिपकर आती है। जिन्दगी में यह हमेशा याद रखो।

ज़ीनत : आपका कहना सही है, जहाँपनाह ! लेकिन दवा मैंने खुद चखकर देख ली है।

आलम : हमारे सामने नहीं चखी गयी, ज़ीनत ! लेकिन खैर, कोई बात नहीं। दवा खाएँगे···लेकिन थोड़ी देर के लिए आराम, फिर वही तकलीफ़ ! क्या करें दवा खाकर (जोर से खाँसी आती है।)····
अच्छा लाओ, खायें तुम्हारी दवा। आबेहयात से बढ़कर····

[आलमगीर हाथ बढ़ाते हैं। ज़ीनत प्याले में दवा डालकर देती है। आलमगीर उसे हाथ में लेकर देखते हैं। सोचते हुए एक बार रुकते हैं, फिर थोड़ी-सी पीते हैं।]

आलम : (गला साफ़कर) पी ली तुम्हारी दवा, बेटी ! इस दवा में ज़ायक़े के साथ तुर्शी भी है। हुकूमत का प्याला भी ऐसा ही होता है।

ज़ीनत : लेकिन आपने सब तुर्शी ज़ायक़े में तबदील कर ली है।

आलम : नहीं, ज़ीनत ! मराठों ने ऐसा नहीं होने दिया। हम क़ुरान पाक की क़सम खाकर कहते हैं कि हम मराठों का नामोनिशान मिटाने में अपनी सारी सल्तनत की बाज़ी लगा देते, लेकिन····लेकिन अब वह हौसला नहीं रह गया। कमज़ोरी और बुढ़ापे ने हमें बेबस कर दिया है। (ठहरकर) हमारे बहुत से काम अधूरे पड़े हैं। काश, हमारी ज़िन्दगी के दिन अभी खत्म····न होते····!

ज़ीनत : (उत्साह से) अभी आप बहुत दिनों तक सलामत रहेंगे, आलमपनाह !

आलम : (विह्वल होकर) अह, फिर एक बार कहो ज़ीनत ! हम यह बात फिर से सुनना चाहते हैं। ओफ़···अगर हमारी ज़िन्दगी के दिन अभी खत्म न होते ! हम एक बार फिर शमशीर लेकर मैदानेजंग

में जाते, बाग़ियों से कहते—कम्बख्तो ! आलमगीर कमज़ोर नहीं है। उसकी तलवार में अब भी चिनगारियाँ हैं। घुटने टेककर गुनाहों की माफ़ी माँगो, नहीं तो काफ़िरो ! दोज़ख का रास्ता खून की नहर से है। हमारी शमशीर से कटो और दोज़ख में दाखिल····(आवेश में खाँसी, रुकने पर भारी साँस लेते हैं।) दोज़ख····में दाखिल····हो····!

ज़ीनत : आप आराम करें, जहाँपनाह ! नहीं तो आपकी तबियत और भी खराब हो जायगी।

आलम : इससे ज़ियादह और क्या खराब होगी जीनत ! जब हम मौत के दरवाज़े पर खड़े होकर दस्तक दे रहे हैं। चाहे जब खुल जाये। और आलमगीर के लिए जल्दी ही खुलेगा। देर नहीं हो सकती। मौत भी डरती होगी कि देर हो जाने से कहीं आलमगीर सज़ा न दें। (खाँसी) ज़िन्दगीभर सज़ा ! सजा (रुकते हुए) अब्बाजान····को····भी····आँजहानी शाहेजहाँ को····(सोचते हैं।)

ज़ीनत : आलमपनाह ! तज़किरे न उठायें।

आलम : (भौंहों में बल देकर) क्यों न उठायें ? जिन्दगीभर गुनाहों का बोझ उठाया है तो मरते वक्त उसका तज़किरा भी न उठायें ? लेकिन, ज़ीनत ! हमने सैकड़ों बार अपने दिल को दिलासा देने की कोशिश की। हमने गुनाह कहाँ किये ? क़ुराने पाक की रूह से, शरअ से····इस्लाम का नाम दुनियाँ में बुलन्द करने के लिए—जिहाद के लिए, जो काम हमने किये, क्या उनका नाम गुनाह है ? क़ाफ़िरों को जहन्नुमरसीद किया···क्या यह गुनाह है ? उपनिषद् पढ़नेवाले दारा से सल्तनत छीनी····क्या यह गुनाह है ? नमूना-दरवा-ए-इलाही में क्या मुझसे गुनाह हुए ? आलमगीर ज़िन्दा पीर····! लेकिन कोई आवाज़ कानों में कहती है कि आलमगीर ! तूने इस्लाम का नाम लेकर दुनिया को धोखा दिया है।

तूने इस्लाम की हिदायतों को नहीं समझा ! ज़ीनत ! तू (तू पर ज़ोर) बतला यह आवाज़ ठीक है ? क्या हमने इस्लाम के उसूलों को ग़लत समझा ?

ज़ीनत : (शान्ति से) आपसे कोई ग़लती नहीं हुई, जहाँपनाह !

आलम : (शून्य में देखते हुए) हज़ारों सतनामियों को क़त्ल किया.... दारा, शुजा, मुराद को तख्ते-ताऊस का हक़ नहीं दिया और बाप को सात बरस तक........लम्बे सात बरस तक........

ज़ीनत : लेकिन आलमपनाह ! अगर ग़ौर से देखा जाये तो शहंशाह शाहेजहाँ को नज़रबन्द करना ग़लत नहीं कहा जा सकता । अपनी पीरी में वे अपनी आँखों से अपने बेटों का मज़ार देखते ! क्या उन्हें तकलीफ़ न होती ? आपने उन्हें उस तकलीफ़ से बचा लिया ।

आलम : लेकिन उस तकलीफ़ के पैदा करने का ज़िम्मा किसका है ? हमारा । हमने ही लाहौर में दारा की क़ब्र बनवायी । हमने ही आगरे में मुहम्मद को भेजकर अब्बाजान का महल क़ैदखाने में तबदील कराया....! उस दास्तान को तुम जानती हो ?

ज़ीनत : जहाँपनाह ! मुझसे वह दर्दनाक दास्तान क्यों दुहरवाना चाहते हैं ? आप आराम कीजिए । आपकी तबियत ठीक नहीं है ।

आलम : तो हम ही वह दास्तान कहेंगे जो हमने मुहम्मद से सुनी है । (शून्य में देखते हुए) आधी रात थी....कमरे में सिर्फ़ एक शमा जल रही थी....दूसरी शमा शहंशाह शाहजहाँ की आँखों में झिल-मिला रही थी । वह चारपाई पर तसवीरे-संग की तरह लेटे हुए थे । उनकी पथराई आँखें दूर पर दिखायी देनेवाले ताजमहल पर जमी हुई थीं, हल्की चाँदनी थी । शहंशाह ने जहाँनारा से कहा—जहाँनारा ! आलमगीर से पूछो, वह हमारी तरह ताजमहल को तो क़ैद नहीं करेगा....?

ज़ीनत : (आग्रह के स्वरों में) जहाँपनाह....

आलम : (उसी स्वप्न में) बादशाह की ज़बान तालू से सट गयी थी.... गला सूख रहा था। गहरी और सर्द साँस लेकर उन्होंने फ़रमाया—मुमताज ! हमारी बेगम ! ताज हमें पत्थरों से नहीं, आँसुओं से बनवाना चाहिए था...काश, यह मुमकिन हो सकता !

ज़ीनत : (सहानुभूति के साथ) उन्हें बहुत तकलीफ़ थी, आलमपनाह ! लेकिन इस वक़्त यह सोचना बेकार है। रात ज़ियादह बीत रही है।

आलम : (चौंककर तसबीह फेरते हुए) क्या कहा ? रात ज़ियादह बीत रही है ? आज हमारे लिए भी शायत वही मौत की रात है। लेकिन हमारे सामने कोई ताजमहल नहीं है। (ठहरकर) हम इस लायक़ हैं भी नहीं, ज़ीनत ! ज़िन्दगी में हमने कुछ नहीं किया, सिर्फ लड़ाइयाँ ही लड़ी हैं। उन्हीं में हमने फ़तह हासिल की है, लेकिन आज....आज ज़िन्दगी में हमें शिकस्त ही मिली....भारी शिकस्त। हमने अब्बाजान को क़ैद नहीं किया, इस आखिरी वक़्त में अपने चैनो-सुकून को ही क़ैद किया। आज इतने बरसों के बाद अब्बाजान की चीख हमारे कानों में आ रही है....प्यास से उनका गला सूख रहा है। उनकी आवाज में कितना दर्द है....तुम सुन रही हो....? नहीं ? उनकी हसरत-भरी निगाहों की टक्कर से ताजमहल जैसे चूर-चूर होने जा रहा है।

ज़ीनत : (अत्यन्त सान्त्वना के स्वरों में) जहाँपनाह ! कहीं कुछ नहीं है। आप सोने की कोशिश कीजिए। जो कुछ हुआ उसे भूल....

आलम : (बीच ही में) नहीं भूल सकते, ज़ीनत ! हमने अपनी रूह नींव में दफ़न कर सल्तनत की इमारत खड़ी की है। आज रूह तड़प-कर करवट लेना चाहती है। वह चीख रही है। तुम उसकी आवाज़ भी नहीं सुनना चाहती ?

ज़ीनत : जहाँपनाह ! ख़ुदा को याद कीजिए। सोने की कोशिश कीजिए। रात आधी से ज़ियादह बीत चुकी है।

आलम : ज़िन्दगी उससे ज़ियादह बीत चुकी है। (नेपथ्य की ओर उँगली उठाकर) देखती हो यह अँधेरा ? कितना डरावना ! कितना ख़ौफ़नाक ! दुनिया को अपने स्याह परदे में लपेटे हुए है। गोया यह हमारी ज़िन्दगी हो ! इसमें कभी सुबह नहीं होगी, ज़ीनत ! अगर होगी भी तो वह इसके काले समन्दर में डूब जायेगी। इस अँधेरे में सूरज भी निकले तो वह स्याह हो जायेगा। (रुककर) ओह····कितना अँधेरा है ! ख़ुदा, हमने तेरा नाम लेकर सल्तनत पर कब्ज़ा किया, तेरा नाम लेकर औरतों और बच्चों को क़ैद किया, वे सब तेरे बच्चे ! तेरे बन्दों पर एतबार नहीं किया। तेरा नाम लेकर····कुरान की क़सम खाकर मुराद····भाई मुराद से सुलह की और फिर····और फिर उनका ख़ून····(खाँसी आती है और फिर निश्चेष्ट हो जाते हैं)

ज़ीनत : (घबराहट के स्वर में) जहाँपनाह····! जहाँपनाह ! (फिर पुकारकर) करीम ! करीम !!

[करीम सिपाही का प्रवेश। वह अदब से सलाम करता है।]

ज़ीनत : (आदेश के स्वर में) हकीमसाहब को फ़ौरन यहाँ आने की इत्तिला करो। बादशाह सलामत की तबियत ख़राब होती जा रही है। फ़ौरन जाओ। हकीमसाहब अमीरों के दूसरे कमरे में होंगे। फ़ौरन····

करीम : जो हुक्म। (अदब के साथ सलामकर प्रस्थान।)

[ज़ीनत के मुख पर घबराहट के चिह्न और स्पष्ट हो जाते हैं। वह एक पंखे से हवा करती है। आलमगीर होश में आते हैं। धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलकर ज़ीनत को घूरकर देखते हैं।]

आलम [काँपते हुए स्वर में] कौन····? अब्बाजान ! (आँखें फाड़कर) तुम ?····तुम ज़ीनत हो ? अब्बाजान कहाँ गये ? अभी तो यहाँ

आये थे। (सोचते हुए) ज़र्द था उनका चेहरा····आँखों में आँसू थे। (ठण्डी साँस लेकर) इतने बड़े शहंशाह की आँखों में आँसू ? उन्होंने हमारे सामने घुटने टेक दिये और कहा—शहंशाह आलमगीर ! हमें हमारा बेटा औरंगज़ेब वापस कर दो····! बादशाही लिबास में हमारा बेटा खो गया है····उसे हमें वापस कर दो····! (कुछ ठहरकर) लेकिन, ज़ीनत ! वह बेटा कहाँ है ? उसने तो अपने अब्बाजान को क़ैद किया है। (इसी समय कमरे में टँगा हुआ पक्षी अपने पंख फड़फड़ा उठता है। आलमगीर उसकी तरफ चौंककर देखते हैं।)····और यह परिन्दा अपने पर फैलाकर हमसे कुछ कह रहा है····क्या कहेगा ? इसे भी तो हमने सोने के पिंजड़े में क़ैद किया है ! (ज़ीनत की ओर आग्रह से) ज़ीनत ! इस पिंजड़े का दरवाजा खोल दो। (ज़ीनत पिंजड़े का दरवाजा खोलती है।) उसे निकालो (ज़ीनत परिन्दा पकड़कर निकालती है।) उड़ा दो उसे (ज़ीनत उसे खिड़की से बाहर उड़ा देती है। आलमगीर उसके उड़ने की दिशा में कुछ देर देखकर सन्तोष की गहरी साँस लेते हैं।) आ····जा····! (कुछ रुककर) हम अब्बाजान को इस तरह आजाद नहीं कर सके ! हिन्दुस्तान के बादशाह को इस परिन्दे की क़िस्मत भी नसीब नहीं हुई !

ज़ीनत : लेकिन, आलमपनाह ! बादशाह तो न जाने कब के दुनिया की क़ैद से निकलकर आज़ाद हो गये। अब किस बात का मलाल है ? आप अपनी तबियत सँभालिए। मैंने हकीमसाहब को बुलवाया है। वे आते ही होंगे।

आलम : (ज़ीनत की बात जैसे उन्होंने सुनी ही नहीं।) परिन्दे की क़िस्मत····बादशाह की क़िस्मत नहीं हो सकी····! इस अँधेरे में उस परिन्दे की क़िस्मत जागी है। वह खुश होकर शोर कर रहा है। बचपन में दारा भी इसी तरह शोर करता था। (रुककर)

कुछ वैसी ही आवाज़ आ रही है। [सुनते हुए] वह देखो। यह आ रही है [रुककर] लेकिन यह आवाज़ कैसी है! इस खौफ़नाक अँधेरे में यह आवाज़ जैसे मुँह फाड़कर खाने दौड़ रही है! यह आयी! ज़ीनत! आवाज़ सुनती हो!

ज़ीनत : [आश्चर्य से] कैसी आवाज ? कौन-सी आवाज़ ? जहाँपनाह!

आलम : [आँखें फाड़कर] अरे, इतने जोर से आवाज़ आ रही है और तुम्हें सुनायी नहीं पड़ती ? यह देखो। [सुनते हुए] फिर आयी। यह हर लमहे तेज़ होती जा रही है। ज़ीनत! [पुकारकर] ज़ीनत! यह आवाज़! [चीख़कर] यह खौफ़नाक....आवाज!

ज़ीनत : [धैर्य के स्वरों में] कोई अवाज़ नहीं है, जहाँपनाह! आपकी तबियत में घबराहट है। इसी वजह से ऐसा खयाल पैदा हो रहा है। [विश्वासपूर्वक] कहीं कोई आवाज़ नहीं है। आप अपने को सँभालने की कोशिश करें।

आलम : [घबराहट से कुछ उठकर] नहीं, नहीं, यह आवाज बराबर आ रही है। कोई चीख रहा है ? [संकेतकर] यह देखो, अँधेरे में यह कौन झाँक रहा है ? [जोर से] कौन ? [पुकार-कर] सिपहसालार ?

ज़ीनत : [समीप होकर] कोई नहीं है, जहाँपनाह! सिपहसालार की ज़रूरत नहीं है।

आलम : [घबराहट से भर्राए हुए स्वर में] यह खिड़की के पास कौन है! [संकेत करते हुए] कराहता हुआ, चीखता हुआ। ओह उसने फिर चीख भरी, अरे दार....! [काँपते हुए] दारा! तुम हो! हमने तुम्हारा खून नहीं किया! हमने नहीं किया, दारा! हुसेनखाँ जबरदस्ती तुम्हारे कमरे में घुस आया। हमने उसे हुक्म नहीं दिया था। और....और [काँपकर] तुम्हारा सर कहाँ है दारा ? तुम्हारा सिर किधर गया ? [आलमगीर उठ खड़ा होता है। फिर लड़खड़ाते हुए] हम खोजकर लायेंगे। हम अभी

खोजकर लायेंगे। [हाथ फैलाते हुए] तुम्हारा इतना खूब-सूरत सिर....!

[ज़ीनत उन्हें रोककर फिर पलंग पर लिटा देती है। आलमगीर अचेत हो जाता है।]

ज़ीनत : [अपने आँचल से अपने माथे का पसीना पोंछते हुए] जहाँपनाह....!

[करीम का प्रवेश]

करीम : [अदब से सलाम करके] शाहज़ादी ! हकीमसाहब तशरीफ़ लाये हैं।

ज़ीनत : [शीघ्रता से] फौरन उन्हें अन्दर भेजो, इसी वक्त।

करीम : [सलामकर] जो हुक्म। [शीघ्रता से प्रस्थान]

ज़ीनत : [कम्पित स्वर में आँखों में आँसू भरकर] क्या जानती थी कि अहमदनगर में यह सब होगा ! या खुदा ! [आलमगीर को चादर ओढ़ाती है]

[हकीमसाहब का प्रवेश ! लम्बी दाढ़ी, काला चोंगा, सिर पर अमामा, सफेद पैजामा और ज़री के जूते। साथ में दवाओं का एक सन्दूकचा।]

हकीम : [बादशाह को अदब से सलाम करने के बाद ज़ीनत को सलाम करता है।] आदाब !

ज़ीनत : [कम्पित स्वर में] आलमपनाह को होश नहीं है, हकीमसाहब ! [उठकर हकीमसाहब के पास आती है।] आज रात को आलमपनाह की तबियत बहुत ही खराब रही। जाने उन्हें क्या हो गया है ! जागते हुए ख्वाब देखते हैं और चीख उठते हैं ! एक लमहा चैन उन्हें नहीं है [करुण स्वर में] अब आप ही मेरे नाखुदा हैं ! तबियत घबराती है। जहाँपनाह को अच्छा कर दीजिए, जल्द अच्छा कर दीजिए।

हकीम : जहाँपनाह को होश नहीं है ! [गम्भीर और सान्त्वना के स्वरों में] घबराइए नहीं, घबराइए नहीं, शाहजादी ! खुदा पर भरोसा रखिए ! इंशाअल्लाह, बादशाह सलामत बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे । देखिये, मैं दवा देता हूँ । बादशाह सलामत अभी होश में आये जाते हैं । घबराने की कोई बात नहीं ।

ज़ीनत : [विकृत स्वर में] मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि मैं क्या करूँ !

हकीम : इतमीनान के साथ आप बादशाह सलामत को पंखा झलें ।

[हकीम अपने सन्दूकचे में से एक डिबिया निकालते हैं । ज़ीनत पंखा झलती है ।]

हकीम : [डिबिया का ढक्कन खोलते हुए] अब बादशाह सलामत की खाँसी कैसी है ?

ज़ीनत : खाँसी में बहुत आराम है । पहले तो वे हर बात कहने में खांसते थे । आपकी दवा से उनकी खाँसी बहुत कुछ रुक गयी, लेकिन घबराहट बहुत ज़ियादह बढ़ गयी है । [पंखा झलती है ।]

हकीम : घबराहट भी दूर हो जायगी [आलमगीर को नाक के समीप बहुत आहिस्ते से डिबिया ले आता है ।] अभी जहाँपनाह को होश आता है । आप सब्र करें ।

ज़ीनत : उनकी बेचैनी देखकर तो मैं बिलकुल ही घबरा गयी थी । मैंने बड़ी मुश्किल से अपने को काबू में रक्खा । अगर मैं भी घबरा जाती तो फिर इधर था ही कौन ?

हकीम : जहाँपनाह की खिदमत करना मेरा पहला फ़र्ज है ।

ज़ीनत : इसीलिए तो मैंने आपके पास फौरन खबर भेजी !

हकीम : मैं खबर पाते ही हाजिर हुआ । [आलमगीर पर गहरी नजर डालकर] देखिए, देखिए ! बादशाह सलामत को होश आ रहा है । पंखा धीमा करें !

[आलमगीर के ओठों में कुछ स्पन्दन होता है, जैसे वे कुछ कहना चाहते हैं। फिर हलकी अँगड़ाई लेकर आँखें खोलते हैं। ज़ीनत और हकीम के मुख पर प्रसन्नता की झलक।]

ज़ीनत : [उत्साह से] होश आ गया ! होश आ गया !!

हकीम : बादशाह सलामत को आदाब अर्ज़ करता हूँ। [दरबारी ढंग से सलाम करता है।]

आलम : [धीमे स्वर में] पा····नी····!

[ज़ीनत शीघ्रता से सुराही में से गुलाबजल निकालकर आगे बढ़ाती है।]

ज़ीनत : जहाँपनाह, यह पानी····

[आलमगीर उठने की कोशिश करता है। हकीम उन्हें उठने में सहारा देता है। आलमगीर पानी पीने के लिए झुकते हैं। लेकिन दूसरे क्षण रुक जाते हैं।]

आलम : [प्रश्न-सूचक स्वर] यह कौन-सा पानी है ?

ज़ीनत : [नम्रता से] वही गुलाबजल है जो आपके लिए खासतौर से तैयार किया गया है।

आलम : [सन्तोष से] लाओ [एक घूँट पीकर···घबराकर] हमारा तसबीह कहाँ है ?

ज़ीनत : [पलंग से तसबीह उठाकर] यह है, जहाँपनाह !

आलम : [लेते हुए] हमेशा मेरी ज़िन्दगी के साथ रहनेवाली···!

[फिर एक घूँट पानी पीकर हकीमसाहब को घूरते हुए] तुम कौन····हो [एक क्षण बाद जैसे स्मरण करते हुए] शायद हकीम····साहब····?

हकीम : [सलाम करते हुए] जी, जहाँपनाह !

आलम : [कातर स्वर में] हमारी हालत बहुत खराब है हकीमसाहब ! अब शायद हम न बचेंगे। [ठण्डी साँस लेते हैं।]

हकीम : ऐसी बात न फ़रमाएँ जहाँपनाह ? बुख़ार आपका अब दूर हो ही गया, सिर्फ कमज़ोरी और खाँसी है। खाँसी भी अब अच्छी हो चली है और कमज़ोरी भी इंशाअल्लाह दूर हो जायगी।

आलम : तो ज़िन्दगी भी दूर हो जायगी, हकीमसाहब ! इस वक्त हमारे लिए कमजोरी और ज़िन्दगी दो अलग-अलग चीज़ नहीं हैं। एक दूर होगी तो दूसरी भी दूर हो जायगी। और आलमगीर कमजोर होकर जिन्दा नहीं रहेंगे।

हकीम : [अदब से] आलमपनाह ! आप बजा फ़रमाते हैं। [हकीम यह बात आदत से कह देता है लेकिन अपनी ग़लती महसूस करने पर घबराहट से] लेकिन इसे सही नहीं मानना चाहिए, आलमपनाह ! [यह सोचकर कि उसे यह भी नहीं कहना चाहिए, वह और घबराकर कहता है।]....मैं क्या करूँ....कुछ जवाब नहीं दे सकता। [हाथ मलते हुए सर झुका लेता है।]

आलम : [गम्भीरता से] ज़ीनत, हकीमसाहब से कहो कि वे हमें बेहोशी की दवा दें।

ज़ीनत : [बात बदलने के विचार से] इन्हीं की दवा से तो आप होश में आये हैं, जहाँपनाह !

आलम : [गम्भीर किन्तु रुकते हुए स्वरों में] लेकिन ज़ीनत, इस होश से हमारी बेहोशी अच्छी है। गुनाहों की याद अब बरदाश्त.... [रुककर, चौंककर, अपनी बात पलटते हुए] हकीमसाहब, कमज़ोरी की हालत अब बर्दाश्त नहीं होती। ऐसी दवा दीजिये कि बेहोशी का आलम रहे। [रुककर] आपके पास—शराब को छोड़कर—कोई ऐसी दवा है ?

हकीम : जहाँपनाह ! आपकी कमज़ोरी बहुत जल्द रफ़ा हो जायगी।

आलम : [तीव्रता से] हमारे सवाल का जवाब दीजिये हकीमसाहब ! आपके पास शराब को छोड़कर कोई ऐसी दवा है ?

हकीम : [घबराकर हकलाते हुए] जी, ऐसी दवाएँ तो बहुत हैं आलम-

पनाह ! लेकिन आपको—अपने जहाँपनाह को कैसे दे सकता हूँ ? ये दवाएँ आपके लिए नहीं हैं, आलमपनाह !

आलम : [आँखें फाड़कर] आलमपनाह के लिए नहीं है ? कौन-सी दौलत है जो आलमगीर के लिए नहीं है ? इस वक़्त बेहोश हो जाने की दवा हमारे लिए सबसे बड़ी दौलत है। हकीमसाहब ! हम इस वक्त वही चाहते हैं।

ज़ीनत : [भृकुटि-संचालन के साथ] हकीमसाहब; आपके पास एक ऐसी दवा भी तो है जिसमें थोड़ी देर की बेहोशी के बाद सारी कमज़ोरी दूर होकर तबियत में ताजगी आती है। [घूरकर देखती है।]

हकीम : [सँभलकर] हाँ, हाँ, एक ऐसी दवा मेरे पास है। मेरे वालिद-साहब ने मुझे वह नुसखा देकर कहा था कि जब सब दवाएँ बेकार साबित हों तब उसका इस्तेमाल किया जाय [हिचकते हुए] मैं अभी उसका इस्तेमाल नहीं करना चाहता था।

ज़ीनत : [आलमगीर से] और जहाँपनाह, इस वक्त वह दवा न खायी जाय तो बेहतर होगा। सुबह होने में ज़ियादह देर नहीं है। और अजान का वक्त क़रीब आ रहा है। आप खुदा की इबादत न कर सकेंगे। अभी वह दवा रहने दें।

आलम : यह बात ठीक कह रही हो बेटी ! अच्छा, अभी वह दवा रहने दीजिये, हकीमसाहब ! आप अजान होने के वक्त तक दूसरी दवा दे सकते हैं।

हकीम : बसरोचश्म। [शाहजादी से] शाहजादी, आप मुझे एक प्याला इनायत फरमायें, मैं कमजोरी दूर करने की दवा अभी पेश करूँ।

ज़ीनत : [प्याला उठाकर] यह लीजिये।

हकीम : [अपने संदूकचे में से एक दवा निकालते हुए] खुदा चाहेगा तो आपको फौरन आराम होगा। सितारों की नहूसत दफ़ा होगी। [प्याले में दवा डालते हुए] आलमपनाह ! हमीदुद्दीनखाँ ने तो

सितारों की नहूसत दूर करने के लिए ४,००० का एक हाथी आलमपनाह पर तसद्दुक कर दिया होगा ?

आलम : [गम्भीर स्वर में] नहीं। जुमेरात को हमीदुद्दीनखाँ ने नुजूमियों के कहने के मुताबिक तसद्दुक करने के वारे में एक दरख्वास्त जरूर पेश की थी, लेकिन हमने उस दरख्वास्त में यह वढ़ा दिया कि यह तो अंजुमपरिस्तों का रिवाज है। इसके वजाय ४,००० रुपया क़ाजी को गुरवा में तक़सीम करने के लिए दे दिया जाय।

हकीम : [उत्साह से आँख चमकाकर] आलमपनाह ने क्या वात कही है ! अव तो सितारों की नहूसत दूर होने में कोई अंदेशा भी नहीं रह गया और मुझे भी यह कामिल यक़ीन है कि यह अरक आपको ऐसी ताकत देगा कि आप तन्दुरुस्त होकर अपनी रिआया के दर्दोग़म को दूर करते हुए सौ साल तक सलामत रहेंगे।

आलम : [सोचते हुए] सौ साल तक ! यानी ग्यारह वरस और ! लेकिन हकीमसाहव, हम ग्यारह दिन भी जिन्दा नहीं रहेंगे। बेटों को भी वादशाहत करने का मौका मिले। हमारे [सोचता हुआ] मुअज्जम....आज़म....कामवख्श....

हकीम : [दवा का प्याला सामने करते हुए] यह सही है, आलमपनाह ! लेकिन हमें भी अपनी खिदमत करने का मौका दें। मैंने अपनी हिकमत की वेहतरीन दवा आलमपनाह के रूवरू पेश की है।

आलम : [ज़ीनत से] अच्छा, ज़ीनत ! यह दवा रख लो। इसे हम नमाज़ के वाद पियेंगे। अव आप तशरीफ ले जा सकते हैं।
[ज़ीनत दवा का प्याला ले लेती है।]

हकीम : [सिर झुकाकर] जो जहाँपनाह का हुक्म। लेकिन एक गुज़ारिश है।

आलम : क्या ?

हकीम : [हाथ जोड़कर] आलमपनाह कुछ न सोचें, कोई गुफ़्तगू न

करें। इस वक्त आराम करना ख़ुद एक मुफ़ीद दवा होगी। सुबह होते ही आलमपनाह की तबियत अच्छी मालूम होगी।

आलम : अच्छी बात है; हम कुछ न सोचेंगे। कुछ गुफ़्तगू न करेंगे। लेकिन हम अपने बेटों को ख़त तो लिखवा ही सकते हैं?....[सोचकर] वही करेंगे। हकीमसाहब! अब आप तशरीफ ले जाइये। हमें अपने बेटों की याद आ रही है।

हकीम : जो हुक्म। [बादशाही अदब के अनुसार सलाम करके प्रस्थान]

आलम : [सोचते हुए] हकीमसाहब कहते हैं कि हम कुछ न सोचें। कोई गुफ़्तगू न करें, सुबह होते ही तबियत अच्छी मालूम होगी। ....लेकिन ज़ीनत, हम जानते हैं कि हमारी तबियत अच्छी नहीं होगी। हमने अपनी किश्ती समन्दर में छोड़ दी है। अब साहिल दूर होता जा रहा है।

ज़ीनत : तबियत में घबराहट होने की वजह से आलमपनाह ऐसा फ़रमा रहे हैं। अब आपकी तबियत अच्छी होने जा रही है। हकीमसाहब की दवा बहुत मुफ़ीद साबित हुई है। देखिये, आपकी खाँसी को कितना फ़ायदा पहुँचा है।

आलम : [जोर देकर] तुम नहीं समझीं, ज़ीनत? जिस तरह सुबह होने से पहले रात और भी सुनसान और ख़ामोश हो जाती है, उसी तरह मौत से पहले हमारी सारी शिकायतों का शोर खामोश हो गया है। अब हमारा आख़िरी वक्त करीब है।

ज़ीनत : [आँखों में आँसू भरकर] ऐसा न कहें, आलमपनाह!

आलम : [गहरी साँस लेकर] और ज़ीनत, हमारी बेटी? आज इस आखिरी वक्त में हमारे बिस्तर के नजदीक हमारा एक भी बेटा नहीं है। ऐसे बाप को तुम क्या कहोगी जिसने बादशाहत में खलल पड़ने के वहम से अपने कलेजे के टुकड़ों को सजा देकर हमेशा कैदखाने में रक्खा? अपने नजदीक आने भी नहीं दिया? [सोचते

हुए] हमारे क़ैदी बच्चों, तुम बदक़िस्मत हो कि आलमगीर तुम्हारा बाप है। तुमने और कोई गुनाह नहीं किया। तुम लोगों का सिर्फ़ यही गुनाह है कि तुम औरंगज़ेब के बेटे हो! आज तुम्हारा बाप मौत के दरवाजे पर पहुँचकर तुम्हारी याद कर रहा है!....मुअज़्ज़म आज....कामबख्श....!

ज़ीनत : [आग्रह से] जहाँपनाह, मैं उन लोगों तक आपके ये मुहब्बतभरे अल्फ़ाज़ ज़रूर पहुचा दूँगी !

आलम : [सन्तोष से] हम अपनी कब्र से भी तुम्हें दुआ देंगे बेटी ? हम खुद अपने बच्चों को ख़त लिखना चाहते हैं। इस आखिरी वक्त में हमारी ख्वाहिश पूरी होने दो। कातिब को बुलाओ [ठंढी साँस लेता है।]

ज़ीनत : आपका हुक्म पूरा होगा अब्बाजान ? [पुकारकर] करीम ? [करीम का प्रवेश। वह सलाम करता है]

ज़ीनत : शाही कातिब को इसी वक्त हाजिर किया जाय।

करीम : जो हुक्म ! [सलाम कर शीघ्रता से प्रस्थान]

आलम : [मन्द स्वर में] हम खुश हुए, बेटी ? हमारी दुआएँ तुम्हारे साथ रहें। आज तक हमने शायद किसी की ख्वाहिश पूरी नहीं की, हमें कोई हक नहीं कि किसी से भी अपनी ख्वाहिश पूरी करने के लिए कहें। लेकिन तुमने हमारी ख्वाहिश पूरी की। बहुत दिनों तक जियो।

ज़ीनत : ज़हाँपनाह ! शाहजादी जहाँनारा ने अब्बाजान की कैद में सात साल तक खिदमत की तो क्या मैं आपकी ख़िदमत कुछ दिनों तक भी न करूँ ?

आलम : हमें भी कैद में समझो, बेटी ! हमारे गुनाहों ने हमें चारों तरफ से घेर रक्खा है। ज़मीर की जंजीरों ने भी हमारे हाथ-पैर बाँध लिये हैं। हम अब इस दुनिया को आँख उठाकर भी नहीं देख सकते। जिस सल्तनत को खून से सींच-सींचकर हमने इतना

बड़ा किया है उसे अगर अब आँसुओं से भी सींचना चाहें तो हमें एक पूरी जिन्दगी चाहिए। वह हमारे पास कहाँ है ? [गला सूख जता है। ठहरकर] वेटी, पानी, पानी''''गला सूख रहा है। [ज़ीनत प्याले में गुलाबजल लेकर पिलाती है।]

ज़ीनत : आप थक गये हैं, जहाँपनाह ! सारी रात आपको बहुत वेचैनी रही।

आलम : उस वेचैनी के खत्म होने का वक्त भी आ रहा है। [खिड़की की ओर संकेत करते हुए] देखो, ये तारे ढल रहे हैं। रातभर इन्होंने रोशनी दी और अब वे अपनी आखिरी घड़ियाँ गिन रहे हैं। हम भी गिन रहे हैं, लेकिन हमने उम्रभर अँधेरा ही फैलाया। उजाले की कोई किरन नहीं रही। हम मौत का ही उजाला दे सके तो अपने को खुशक़िस्मत समझेंगे। [स्तब्धता—एकबारगी चौंककर] सुवह हो गयी क्या ? [खिड़की की ओर देखता है।]

ज़ीनत : [उसी ओर देखती हुई] हाँ, जहाँपनाह ! आसमान पर सफेदी छाने लगी है।

आलम : [गहरी साँस लेकर] खुदा की इवादत का वक्त आ रहा है। [तसबीह फेरते हैं।] ज़ीनत, हमने ज़िन्दगीभर इवादत का ढिंढोरा पीटा, लेकिन खुदा के पास तक नहीं पहुँच सके। अगर पहुँच पाते तो चलते वक्त इतने गुनाहों का बोझ हमारे सर पर न हं ता। चलने का वक्त क़रीव आ रहा है। मुझे खुशी है कि आज जुमा है। हमने ज़िन्दगीभर इवादत कर यही चाहा कि जुमा हमारा आखिरी दिन हो। [अस्थिर होकर] कातिव अभी नहीं आया ?

ज़ीनत : आ रहा होगा, जहाँपनाह ! करीमबख्श फौरन ही उसे लेकर हाज़िर होगा।

आलम : [ठण्ढी साँस लेकर] ज़ीनत, जब हम पैदा हुए थे तब हमारे चारों तरफ़ हजारों लोग थे लेकिन''''लेकिन इस वक्त हम अकेले

जा रहे हैं। हम इस दुनिया में आये ही क्यों, हमसे किसी की भलाई नहीं हो सकी। हम वतन और रैयत दोनों के गुनाह अपने सर पर लिये जा रहे हैं।

जीनत : आलमपनाह ! आपने तो वतन और रैयत की भलाई की है, और ···

आलम : [बीच ही में रोककर] इस आखिरी वक्त में ऐसी वात मत कहो जीनत। ये वातें वहुत वार सुनी हैं। लेकिन अव इन वातों से रूह काँपती है, दिल डूवता है। काश, ये वातें सच होतीं। [गहरी साँस लेता है।]

जीनत : नहीं आलमपनाह ! खानदाने तैमूरी में आपसे वढ़कर अद्ल करने-वाला कोई नहीं हुआ।

आलम : और उस अद्ल में हमने अपनी मुराद पूरी की !····मुराद [मुराद शब्द से मुरादबख्श का स्मरण आने पर] और हमारे मुरादवख्श ने सामूगढ़ की लड़ाई में हमारे कहने पर दारा से लोहा लिया। कितनी हैरत-अंगेज थी वह ? [सोचते हुए] राजा रामसिंह ने तलवार का ऐसा हाथ चलाया कि हम मय-हाथी के जमींदोज हो जाते, लेकिन मुरादवख्श····मुरादवख्श ने अपनी ढाल पर तलवार रोक, राजा रामसिंह पर ऐसा वार किया कि वह हाथी के पैरों पर आ गिरा। उसका केसरिया वाना खून से लथपथ होकर जमीन पर फैल गया, और ! इन सबका बदला मुरादवख्श को क्या मिला ! ओह····पा····नी····।
[जीनत फिर पानी पिलाती है।]

जीनत : हुजूरेआली ! आपसे दस्तवस्ता अर्ज है कि आप अव कुछ न फर-मायें। ऐसी वातें करके आप अपनी हालत और खराव कर लेते हैं।

आलम : [उतावली से] इस वक़्त हमें मत रोको, जीनत-उन्निसा ! हमें मत रोको। हम कहेंगे, जरूर कहेंगे। बुझने के पहले शमा की लौ भड़क उठती है। हमारी याददाश्त भी ताजी हो रही है।

एक-एक तस्वीर आँखों के सामने आ रही है। हम हाथी पर वैठकर सैरगाह जा रहे हैं। आगे-पीछे हिन्दुओं का वेशुमार मजमा है! वे चीख-चीखकर कह रहे हैं कि आलमपनाह, जज़िया माफ़ कर दीजिये। लेकिन हम माफ़ कैसे कर सकते हैं? दकन की लड़ाइयों का खर्च कहाँ से आयेगा? हम कहते हैं…तुम काफ़िर हो! जज़िया नहीं हटेगा। वे लोग हमारे रास्ते पर लेट जाते हैं। हमारा साथी आगे नहीं वढ़ रहा है। हम गुस्से में आकर फीलवान को हुक्म देते हैं, इन कम्वख्तों पर हाथी चला दो। हाथी आगे वढ़ता है और सैकड़ों चीखें हमारे कान में पड़ती हैं। ….हम हँसकर कहते हैं,—काफ़िरो, तुम्हारी यही सजा है। जज़िया माफ़ नहीं हो सकता….नहीं हो सकता….!

ज़ीनत : [आँखों में आँसू भरकर] आलमपनाह !

आलम : [उसी स्वर में] आज वह हाथी हमारे सामने झूम रहा है ज़ीनत, हमारा कलेजा टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा है….। इसकी दवा तुम्हारे हकीमसाहव के पास नहीं है ?

ज़ीनत : [कातर स्वर में] आलमपनाह, आप यह दवा पी लीजिये। इस दवा से आपको वहुत फायदा होगा। [दवा का प्याला आगे वढ़ाती है।]

आलम : [भारी साँस लेकर] जिसने सारी ज़िन्दगी खून का जाम पिया है, उसे दवा का जाम क्या फ़ायदा करेगा ? इसे फेंक दो ज़ीनत; उस खिड़की की राह फेंक दो।

ज़ीनत : आलमपनाह ! यह दवा….[हिचकती है।]

आलम : [तीव्र स्वर में] ज़ीनत ! हम अव भी हिन्दुस्तान के वादशाह हैं। हमारे हुक्म की शमशीर अव भी तेज है। फेंको यह दवा। [ज़ीनत खिड़की की राह से वह दवा फेंक देती है]

आलम : [संतोष से] हम खुश हुए [ठहरकर] सोचो, जो दवा हकीम

ने नहीं चखी, वह दवा हमारे काम की है नहीं। अहमदनगर का हकीम आगरे और दिल्ली का हकीम नहीं है।

ज़ीनत : तो जहाँपनाह ! वह दवा मैं चख लेती हूँ।

आलम : ज़ीनत, जिन्दगीभर हमने अपने ही मकान में आग लगायी है। मरते वक्त अपनी बेटी को भी मौत का जाम चखने देते....? क्या हम हकीम को दवा चखने का हुक्म नहीं दे सकते थे ? लेकिन अब दवा पर हमारा भरोसा नहीं है ज़ीनत ! दुआ पर भरोसा है। हमारे लिए दुआ करो....हमारे लिए दुआ करो....!

ज़ीनत : [हाथ बाँधकर ऊपर देखती हुई] जहाँपनाह सलामत रहें... जहाँपनाह सलामत रहें....जहाँपनाह....आ....मी....न....। [आँखें बन्दकर लेती है।]

[करीम का प्रवेश]

करीम : [सलाम करके] शाहजादी, कातिब हाजिर हैं।

आलम : [चौंककर खुशी के स्वर में] क्या कातिब आ गया ? आ गया ? इसी वक्त उसे हमारे रूबरू हाज़िर करो। हमारे पास ज़ियादह वक्त नहीं है।

करीम : [सलामकर] जो हुक्म। [शीघ्रता से प्रस्थान]

आलम : [संतोष की साँस लेकर] कातिब आ गया, बेटी। काश, यह हमारी सारी जिन्दगी की दास्तान बड़े हरफों में दर्ज करता ! हमारे बेटों के लिए यह बहुत बड़ी नसीहत होती। आलमगीर के आखिरी वक़्त में सच्ची ज़िन्दगी पैदा होती। [तसबीह फेरकर कलमा पढ़ता है।] ला इलाही इललिल्लाह मुहम्मदुर रसूलिल्लाह।

ज़ीनत : [आँखों में आँसू भरकर] अब्बाजान ! [उसका गला रुँध जाता है।]

आलम : रोओ मत बेटी ! हम खुश हैं कि तुम हमारे पास हो। आखिरी वक़्त में अपनी बेटी की आवाज से हमारी कब्र में फूल बिछ

जायेंगे, उसके आँसुओं के कतरों से हमारे गुनाह धुल जायेंगे। हमारी बेटी जीनत ! ·[उसका हाथ अपने हाथ में लेता है।]

[कातिब का प्रवेश। ढीला-ढाला इबा (चोग़ा), कमर में कमरबन्द, सिर पर साफा, सफेद पैजामा, कामदार जूता। वह आकर शाही सलाम करता है।]

आलम : [शीघ्रता से] कातिब, तुम आ गये। हम अपने बेटों को खत लिखाना चाहते हैं। जल्द लिखो। हमारे पास वक़्त बहुत थोड़ा है। लिखना शुरू करो। [आलमगीर आँखें बन्द कर लेते हैं।]

कातिब : [सिर झुकाकर] जो इरशाद !

[कातिब बैठकर लिखने की मुद्रा धारण करता है। कुछ देर तक स्तब्धता रहती है। फिर आलमगीर मन्द किन्तु व्यथित स्वरों में बोलता है। कातिब लिखता जा रहा है।]

आलम : [धीरे-धीरे] सलाम अलेकुम''''आलम, हमारे बेटे; हम जा रहे हैं''''! हम जिन्दगी में अपने साथ कुछ नहीं लाये, लेकिन अपने साथ गुनाहों का कारवाँ लिये जा रहे हैं ! तुम उखूवत, अम्न व एतेमाद पर ख्याल रखना''''। यह सारी दुनियाँ हेच है। हमारी आँखों ने खुदा का नूर नहीं देखा''''जिस्म से गरमी निकल गयी है, अब कोयलों का ढेर बाकी है''''! हाथ-पैर सूखे दरख्त की शाखों की तरह सख्त हो रहे हैं और कलेजे पर मायूसी की चट्टान रक्खी हुई है''''खुदा से दूर हूँ''''और दिल में कोई सुकून नहीं है''''हमारे लिए कौन-सी सज़ा होगी''''यह सोचा भी नहीं जा सकता।''''खुदा की रहमत पर ·हमारा पूरा यकीन है, लेकिन हम अपने गुनाहों का बोझ कहाँ ले जायें ? अब हमने समन्दर में अपनी किश्ती डाल दी है''''खुदा हाफिज''''।

ज़ीनत : [आँखों में आँसू भरे हुए] अब्बाजान !

आलम : [आँख बन्द किये हुए] कामबख्श, हमारे बेटे....

जीनत : [कातिब की ओर इशारा करके] लिखो ? [कातिब लिखता है।]

आलम : हम अकेले जा रहे हैं। तुम बेसहारे हो, इसका हमें मलाल है....? लेकिन इससे क्या फायदा...? जो सजायें हमने दी हैं.... जो गुनाह हमने किये हैं....जो बेइंसाफियाँ हमने की हैं....इन सबका अजाब हम अपने आग़ोश में लिये हैं....हम तुम्हें खुदा पर छोड़ते हैं। अपनी माँ उदयपुरी को तकलीफ मत देना....? मैं रुखसत होता हूँ....अलविदा....!

[थोड़ी देर तक स्तब्धता रहती है।]

जीनत : [करुण स्वर में] अब्बाजान, आप ऐसा खत क्यों लिख रहे हैं ?

आलम : [जीनत की बात पर कुछ ध्यान न देकर] जीनत, मेरी बेटी ? इस जिन्दगी के चिराग में अब तेल बाकी नहीं रहा....? इस खाक के पुतले को कफन और ताबूत की जेबाइश की जरूरत नहीं....इस बदनसीब को जमीन में यों ही दफन कर देना... इस मुश्तेखाक को पहले ही मंजिल पर सुपुर्द-खाक कर दिया जाये....हमें खुशी होगी अगर हमारी कब्र पर कुदरती सब्ज मखमल की चादर बिछी होगी....[कुछ देर ठहरकर] आँ-जहानी, हमारे गुनाहों को बख्श दीजिये....? दारा....! शुजा....! मुराद....!

[इसी समय बाहर 'अल्लाह हो अकबर' की ध्वनि में अजान होती है। आलमगीर ध्यान से सुनते हैं। उनके ओठों में कुछ स्पन्दन होता है, फिर एक झटके के साथ सिर उठाकर अजान आने की दिशा में नेपथ्य की ओर देखते हैं।]

आलम : [तसबीह फेरते हुए नेपथ्य की ओर देखकर रुकते, किन्तु स्पष्ट स्वरों में।]

अल्ला....हो....अक....

['अकबर' का अन्तिम अंश 'बर' ओठों में ही रह जाता है और तकिये पर आलमगीर का सिर झटके से गिर पड़ता है।]

ज़ीनत : शीघ्रता से आलमगीर के सिर के समीप जाकर रुँधे हुए कण्ठ से] आलमपनाह....अब्बा....जान....!

[कोई जवाब नहीं मिलता। बाहर अजान होती रहती है। ज़ीनत अपने आँचल से आँसू पोंछती हुई आलमगीर का मुँह, सिरहाने पड़े हुए रेशमी कपड़े से ढाँप देती है। क़ातिब घुटने टेककर दोनों हथेलियाँ जोड़कर मन-ही-मन कुछ पढ़ने लगता है।]

[परदा गिरता है।]



ऊसर



भुवनेश्वर

[१९१०–१९५५]

पात्र

लड़का, गृहस्वामी, टच्यूटर, युवक, मोटी रमणी, गृहस्वामिनी, लड़कियाँ।

पहला दृश्य

एक मध्यवर्ग बंगले का ड्राइंग-रूमी कमरा, छोटा और नीचा है। दीवारें सादी हैं, पर कुछ तस्वीरें आज ही टँगी हैं, जो कीलें गाड़ने के ताजे निशानों से मालूम होता है। दो दरवाजों और तीन खिड़कियों पर पर्दे हैं, वो रोज़ ही पड़े रहते हैं, आज सिर्फ खिड़कियों पर पर्दों की कोरें तुरुप दी गयी हैं। भीतर के दरवाज़ों पर जाली का पर्दा है, जिसके लगाने के निशान मैले और पुराने हैं। कार्निस पर बहुत-सी तस्वीरें, घोंघे और शंख रखे हैं। एक प्लास्टर ऑफ़ पेरिस का गाँधी का बस्ट भी है। फ़र्नीचर कमरे के लिए कुछ ज्यादा और अक्सर बेमेल है—गहरी नीली सुइट पर दो हरे कुशन हैं, एक बरेली उडवर्क का भी सुईट है, जिस पर रेशम की एक बड़ी बतख़ कढ़ी हुई है, काली बेंच पड़ी है—कुछ बेंत की कुर्सियाँ हैं, जो नंगी हैं और भीतर के दरवाजे के सामने पड़ी हैं—ऐसी कि बिना उनको हटाये कोई भीतर से आ-जा नहीं सकता। बाहर का ताज़ा धुला हुआ बरामदा कमरे से दिखलायी देता है, जहाँ पायदान पर एक भूरा पेकनीज़ दहलीज पर सर रखे सो रहा है और एक किर्मिच की कुर्सी पर एक युवक हाथों को जंगलों में भींचे टाँगे हिलाता हुआ—पोर्च में खड़ी बड़ी नीली क़ार की तरफ़ बड़ी देर से—करीब-करीब जब से वह लाल सुर्खी को दलती हुई और अपने बेलुन टायरों से छोटी-छोटी कंकड़ियाँ उड़ाती हुई आयी है—देख रहा है। दिसम्बर की शाम कुछ-कुछ गाढ़ी हो चली है।

सहसा भीतर से एक आठ वर्ष का लड़का त्यौहारी कपड़ा पहने हुए एक कुर्सी को ढकेलता आता है। बरामदे में कुत्ता और युवक दोनों

चौंक पड़ते हैं। कुत्ता एक बार समझदारी से गुर्राकर फिर सिर टिका देता है। युवक तनिक अपराधी-सा मोटर से नज़र हटा लेता है। लड़का सीधा कुत्ते के पास जाता है। उसके एक पैर का होज़ नीचे आ गया है, जिससे उसकी सफेद वरोठी पिंडली दिखायी दे रही है।

लड़का : (कुत्ते को जूते से सहलाते और अँगुली चटाते हुए) मेरा पिप्पा! तुम्हें कोई नहीं पूछता, तुम यहाँ अकेले पड़े हो, मेरा बू-बी (वहीं बैठ जाता है, कुत्ता वैसे ही आँख वन्द किये कान और दुम हिलाता है) तुम मैले हो····देखो, चुपके से जव सव सो जायें, तव तुम हमारे विस्तर पर आ जाना; हम तुम तो भाई-भाई हैं···· हम तुम····ह····म (कुत्ते को उठता-सा है)।

[भीतर के दरवाजे से कुर्सियों को ढकेलते हुए एक अधेड़ आदमी का प्रवेश। उसके चारों ओर गृहस्वामी का ठठ है। वह आते ही कुछ जोर से कहना चाहता है। पर उसका करा इस्तरी किया हुआ सूट, खर्चीली काट के बाल अनजाने उसे रोक देते हैं। लड़का कुत्ते को एकबारगी छोड़कर कमरे में आ जाता है। पर कुत्ता भी एक आकस्मिक साहस से बच्चे की टाँगों से चिपटकर खेलने लगता है।]

गृहस्वामी : (सियासलाई से दाँत खोदते हुए)—यह क्या बदतमीजी है। भीतर मेहमान आये हैं। तुम यहाँ कुत्ते के साथ शरारत कर रहे हो। (कुर्सियाँ देखते हुए) और यह सव कुर्सियाँ क्यों वरवाद कर दीं?

लड़का : (चट से) कुर्सियाँ? कहाँ? ये तो आपने हटायी हैं।

गृहस्वामी : (खिड़की से बाहर थूककर) और अंग्रेज़ी तो आप सव भूल गये, अव कभी मेहमान आयें, तो अपने ट्यूटर के साथ····

[थूकता है। लड़का बाहर की ओर, युवक की ओर देखता है और युवक जो गृहस्वामी के आते ही उठकर खम्भे के सहारे खड़ा हो गया है, भीतर की तरफ़ धीरे-धीरे बढ़ता है।]

गृहस्वामी : (युवक से) तुम वहाँ गये थे ? मैं कहता हूँ, जब रात को तुम्हें पढ़ना हुआ करे, तो शाम को साइकिलवाजी न किया कीजिये। (थकता है) भाईजान, इसमें आप ही का फ़ायदा है····

युवक : [चुप है····जैसे चुप रहकर वह उसे हरा देगा।]

गृहस्वामी : और तुम भीतर आ सकते थे····(सहसा) और तुमने चाय नहीं पी····?

युवक : जी नहीं····

[गृहस्वामी जैसे इस जवाब से संतुष्ट हो उठा। उसने दियासलाई बाहर फेंक दी और ट्यूटर (युवक) की तरफ़ से फिरकर एक कुर्सी पर बैठ गया। फिर उठकर बत्ती जला दी। उसने सन्तोष से देखा और फिर बैठ गया—ट्यूटर अनजाने खिसककर लड़के के पास आना चाहता है, लड़का चुपचाप कुत्ते की तरफ़ बिना देखे टाँगों से खेल रहा है।]

ट्यूटर : अब तो मिसेज़ सिवेल अच्छी हैं ?

गृहस्वामी : (जैसे उसने मिसेज़ सिवेल का अपमान किया हो) क्या अच्छी हैं ? जरा-सी पार्टी पर आप देखिये, हफ्ते-भर स्ट्रेण्ड हार्ट से पड़ी रहेंगी। अब उन लोगों को घूम-घूमकर मकान और बाग दिखाया जा रहा है····फिर हम लोगों की····

ट्यूटर : मैं आज आपसे सुबह कुछ कहना चाहता था, पर आप सुबह से बिज़ी थे और शायद कल आप दौरे पर चले जायेंगे····?

गृहस्वामी : [एकटक उसकी तरफ़ देखता है, जैसे यह कोई बड़ा बेहूदा सवाल है।]

ट्यूटर : मैं सोचता हूँ कि यह इन्टेलेक्चुअल एक्सपेरिमेण्ट का जीवन जो मैं····

[कुत्ता चीख पड़ता है, शायद उसका पैर जूते से कुचल गया है। ट्यूटर एक छोटी घोड़ी के समान रुक जाता है। गृहस्वामी उछल पड़ता है।]

गृहस्वामी : देखो जी....

[लड़का कुत्ते को बग़ल में दबाकर भीतर भाग जाता है।]

गृहस्वामी : (ट्यूटर के बोलने का इन्तजार करके) मैं इस भीड़-भड़क्के से वहुत भड़कता हूँ और औरतों को तुम नहीं जानते, जब वाहर के आदमी होंगे, तो वे बिल्कुल दूसरी ही हो जायँगी और अपने पति से भी वही उम्मीद करेंगी। मैंने आपके टेबुल पर फ़िगर वोल, मैंने सुनी भी न थी, पर मेरी मेमसाहब शायद यह दिखलाना चाहती थीं कि जैसे हम लोग हफ्ते में दस दिन फ़िगर वोल बरतते हैं....हुँह....

[ट्यूटर के हँसने का इन्तजार करता है]

और अगर किसी ने कुर्सी पर गीला तौलिया टाँग दिया तो हर एक आदमी को वह निशान देखना पड़ेगा, जैसे वह कोई क्यूविज़्म की डिज़ाइन हो।

ट्यूटर : (गम्भीरता से) अब तो मिसेज़ सिवेल अच्छी हैं पहले से।

गृहस्वामी : अच्छी क्या हैं (रुककर) उम्र का तकाजा है। अब देखो वाईस साल की मैरेड लाइफ़ में—(रुक जाता है जैसे ट्यूटर से ये बातें नहीं की जा सकतीं।)

ट्यूटर : (नीचे नज़र हाथ से हाथ दबाये) मैं आपसे कुछ कहना चाहता था....मुझे आपके यहाँ पूरे दो महीने हो गये....

गृहस्वामी : (बाहर की आवाजों को सुनते हुए) मैं सब समझ सकता हूँ, यह आपकी मेहरवानी है। पर मैं मजबूर हूँ। आमदनी का यह हाल है—उजला खर्च—क़तई मजबूर हूँ। यह मदरासी मेम २५ पर तैयार की थी; मुझे कहना न चाहिए। मैंने सिर्फ आपकी इमदाद की गरज से, समझे, यह इन्तजाम किया था।

ट्यूटर : मुझे अफ़सोस है।

गृहस्वामी : (कुछ समझ नहीं पाता) तो तुम वाइसिकिल पर कहाँ-कहाँ गये थे ?

ट्यूटर : मैं साइकिल पर कहीं नहीं गया''''मैं गया ही नहीं (एकबारगी रुक जाता है)

[सन्नाटा हो जाता है। पर यह साफ़ है कि किसी का बोलना जरूरी है]

गृहस्वामी : (टाँगें हिलाटे हुए) मेरी ज़िन्दगी का एटीट्यूड बिल्कुल मुख्तलिफ़ है। तुम अपने सोशलिज़्म-ओशलिज़्म के जोश में शायद यह समझ बैठे हो कि ज़िन्दगी का गहरे-से-गहरा मतलब तुम्हारे लिए साफ़ हो गया है। जैसे कोई बड़ा सरकस-घोड़ा तुम्हारे काबू में आ गया, पर ज़िन्दगी अगर इस तरह लटके और फ़ार्मूलों में बाँधी जा सकती, तो आज तक कब की ख़त्म हो जाती'''जी''''साहब सोशलिस्ट हैं, पर आज जो कुछ भी हम कुत्तों के समाज से आप इन्सानों को मिला है, हम वापस ले लें''''

[ट्यूटर साफ़ है कि इन बातों को निरर्थक समझता है।]

हाँ, हमारे स्कूलों, यूनिवर्सिटियों की तालीम, हमारी लाइब्रेरीज़, हमारे बाज़ार, हमारे''''

ट्यूटर : [उठकर बाहर खिड़की की तरफ़ झाँकता है, गृहस्वामी भी उठ खड़ा होता है।]

गृहस्वामी : क्या वे आ रहे हैं ?

ट्यूटर : [चुपचाप बाहर झाँक रहा है।]

गृहस्वामी : यह कैसी पार्टी है ? (टहलता हुआ) आप लोग वाकई''''(फिर बैठ जाता) मैं कहता हूँ कि आनेवाली जेनरेशन चाहे वह बिल्लियों की हो या सर्पों की, हमसे अच्छी होगी''''हमसे।

ट्यूटर : (मुस्कराता है।) वे शायद पीछे से पार्क में चले गये !

गृहस्वामी : (चौंककर) पार्क में ? और कुसुम को तबियत स्ट्रेण्ड हार्ट, कैफ़िया स्परिंग····मैंने एक किताब पढ़ी थी, उसमें हमारी सभ्यता की तसवीह एक बड़ी दुकान से दी गयी थी, ऊपर-ऊपर-ऊपर चढ़े चले जाइये पर नीचे ज़मीन की आँखें हम हज़म करने के लिए बेताब हैं—वाकई आनेवाली जेनरेशन, पर मैं कहता हूँ कि कोई जेनरेशन आती नहीं। यहीं ज़मीन की आँख जब बजाय हज़म करने के कै कर देती है····

[भीतर कुछ आवाजें सुनायी देती हैं। गृहस्वामी सहसा कड़ाई से ट्यूटर की तरफ देखता है। ट्यूटर उस नजर को बचाकर बाहर चला जाता है। भीतर के दरवाजे से एक मोटी अधेड़ रमणी, महीन सफेद बेल लगी बनारसी साड़ी पहने, एक जरा दुबली रमणी, महीन सफेद बेल लगी सफेद धोती पहने, दो युवतियाँ, दोनों नीली साड़ियाँ पहने, एक युवक अचकन और चूड़ीदार पाजामे में आते हैं। चेहरे से वे सभी थके हुए मालूम होते हैं, पर वे सब बराबर हँस रहे हैं—जैसे जवान लड़कियाँ आपस में हँसती हैं, जब दूसरे का कोई साहसपूर्ण भेद जानती हैं]

मोटी रमणी : [पास की कुर्सी पर बैठ जाती है, गृहस्वामी उसके बैठ जाने के बाद 'बैठिये' कहता है] हम लोग पार्क में चले गये थे (हँसकर) आपका डिनामाइट भी हमने देखा (सब हँस पड़ते हैं)

गृहस्वामी : (जबरन हँसी में शामिल होकर) कैसा डिनामाइट ?

[युवक ने उन लड़कियों को बैठाल दिया है। सफेद धोतीवाली भी जो गृहस्वामिनी है, बैठ जाती है। उसके बैठ जाने पर गृहस्वामी भी बैठ जाता है। सिर्फ युवक खड़ा रहता है।]

मोटी रमणी : आपका डिनामाइट। (फिर हँसी होती है)

गृहस्वामी : (गम्भीर होकर) खैर, यह तो मज़ाक है, पर यह मैं जानता हूँ। मेरा यक़ीन है कि दुनिया के सब गोले-बारूद एक आदमी की

मर्जी से चाहे वह हजारों मील दूर बैठा हो, फट सकते हैं।

[अब की वह खुद हँसी शुरू करता है।]

गृहस्वामिनी : यह लोग योग बहुत जानते थे, अब सब बेचारे भूल गये !

[फिर हँसी होती है, पर पहले से कुछ धीमी।]

युवक : आपका यह ख्याल चाहे मजाक हो, पर हिटलर और मुसोलिनी के लिए हमें ऐसी ताक़त पैदा करनी होगी।

गृहस्वामी : (हँसकर) हिटलर और मुसोलिनी ही क्यों ? और ऐसी ताक़त मौजूद है, अगर हज़रत आदमी की औलाद बहुत उछल-कूद मचायेगी, तो वह ताक़त काम में लायी जायेगी—बेचारा गाँधी क्या कहता है ?

युवक : गाँधी तो सठिया गया है—

[लड़कियाँ आपस में धीमी हँसी हँसती हैं।]

मोटी रमणी : मैं तो वह कुछ जानती नहीं। लेकिन हाँ, अभी विक्टोरिया-सी कोई मल्का हो जाय, तो सब फिर ठीक हो जाये। दुनिया की यह तबाही विक्टोरिया के मरने बाद आयी।

युवक : विक्टोरिया क्या करेगी ?

मोटी रमणी : तुम्हारा तो कहीं पता न था तब। विक्टोरिया के ही राज में सुख था....

गृहस्वामी : खैर, लड़ाई-भिड़ाई की तो बात छोड़िये....मैं आपको एक क़िस्सा सुनाता हूँ।

गृहस्वामिनी : क्या हम लोग यहीं बैठे रहेंगे ? कहीं घूम आयें।

गृहस्वामी : खाना खाकर चलेंगे, सिनेमा या और कहीं....।

युवक : (लड़कियों के पास ही कुर्सी खिसकाकर बैठ जाता है। बड़ी लड़की उसकी तरफ देखकर लाज से सिमट जाती है।) हाँ; तो आपका वह किस्सा ?

गृहस्वामी : वह कुछ नहीं, लखनऊ में जब हिन्दू-मुसलमानों का दंगा हुआ,

तो हम लोग आगा तुराब के हाते के पास एक बँगले में रहते थे। हम वहाँ तीन हिन्दू थे और तीन ही चार घर मुसलमानों के थे। खैर, हम लोग सब मिलकर उन मुसलमानों के पास गये कि या तो वे लोग हाता छोड़कर मुसलमानों की बस्ती में चले जायें या हम लोग हिन्दुओं की। जब वहाँ गये, तो मालूम हुआ कि वे लोग खुद हमसे डरे हुए हैं और लाठियाँ लिये अपना सामान और बीबी-बच्चे लिये जा रहे हैं। हाँ, उसी तरह यूरोप में सब एक-दूसरे से····

गृहस्वामिनी : बेबी क्या घूमने गयी है ?

युवक : (अवाक्-सा) तो हम लोग नौ बजे तक क्या करेंगे ?

छोटी लड़की : (धीरे से) अब साढ़े सात बजे हैं।

गृहस्वामिनी : रिकार्ड सुनियेगा ? पर कोई नया रिकार्ड तो हमारे पास है नहीं।

युवक : (ओठ दबाकर) कोई गाना ही गायें।

[लड़कियाँ खासकर बड़ी शर्माती हैं]

गृहस्वामी : ओ बेटियो गाओ न····

मोटी रमणी : आप गाइये, इन बेचारियों को क्या आता है ?

गृहस्वामी : ओहो, तो आप ही गाइये।

[सब इसे पढ़ते हैं और फिर एकबारगी सन्नाटा हो जाता है।]

मोटी रमणी : (युवक की तरफ देखकर) अब तुम कोई अपना विलायत का क़िस्सा सुनाओ।

युवक : (ऊबा-सा) विलायत का क़िस्सा—आप लोग ब्रिज खेलते हैं ?

मोटी रमणी : ये लड़कियाँ खेलती हैं। इनके दादा ने मुझे कितना सिखाया, मुझे आया ही नहीं।

गृहस्वामिनी : ब्रिज क्या होगा ? आइये····

[गृहस्वामिनी एकबारगी उठकर भीतर जाना चाहती है ।]

मोटी रमणी :
गृहस्वामी : } कहाँ !!

गृहस्वामिनी : (द्वार के पास रुककर) आप लोगों के लिए काफ़ी-आफ़ी ही मँगाऊँ....

मोटी रमणी : काफ़ी क्या होगी—बैठिये बातें करें—अभी तो खाना है ।

[सब फिर हँस पड़ते हैं और घड़ियाँ देखते हैं और सन्नाटा हो जाता है ।]

गृहस्वामी : (युवक से) राजाजी, तुम आज ट्यूटर से बात कर लेना ।

मोटी रमणी : ट्यूटर कौन ?

गृहस्वामी : बेबी के लिए रखा है, बवाल जान हुआ जा रहा है ।

गृहस्वामी : (मुस्कराते हुए) वह समझता है कि वह हम लोगों से बहुत ऊँचा है और जो नौकर-मालिक का सम्बन्ध हममें है वह इसकदा हमको छोटा बना देता है कि वह हमारा मुकाबला भी नहीं करता । उनका पाक ख्याल है कि वह हम लोगों के साथ इन्टेलेक्चुअल एक्स्पेरिमेण्ट कर रहे हैं ।

[कुछ समझदारी से और कुछ नासमझी से लोग इस विचित्र आदमी पर खुश हो रहे हैं । केवल युवक गम्भीर है ।]

गृहस्वामी : उन्हीं का नहीं, आज सब जवान आदमियों का यही हाल है । वे किताबों के अधकचरे असर से बग़ावत तो करना चाहते हैं पर नहीं कर सकते और मैं आपसे पूछता हूँ (एकबारगी युवक की ओर देखकर नज़र हटा लेता है) यह बग़ावत किसके खिलाफ है । आप नेचर से वैर कर सकते हैं ? नहीं कर सकते ? आप छत पर से गिरेंगे तो दुनिया की कोई ताक़त आपका सर फटने से नहीं रोक सकती । (एकबारगी धीमा पड़कर) । तुम उन्हें समझा देना....

गृहस्वामी : मुझे तो आपकी बात पसन्द आयी कि विक्टोरिया जैसी मल्का कोई हो जाय तो अभी सब ठीक हो जाय, वही बातें फिर लौट आयें''

मोटी रमणी : (गर्व से तनकर) लिखा है 'यथा राजा तथा प्रजा'; राजा तो ईश्वर है''''

गृहस्वामी : खैर, मैं तो यह नहीं मानता''''

युवक : (ऊबा-सा) आइये कुछ खेलें'''

गृहस्वामी : ताश से मुझे नफ़रत है'''' बिल्कुल छिछोरा खेल है''''

गृहस्वामिनी : फिर क्या खेलें, तुम्हीं बताओ''''

मोटी रमणी : मैं एक खेल बताती हूँ'''हम लोग खेला करते थे—इनके पापा, हम, बीबीजी वगैरह। (सब लोग उसकी तरफ़ गौर से देखते हैं) एक आदमी, जैसे मैं कुछ चीजों के नाम लूँ, जैसे कमरा—

छोटी लड़की : (चटक आवाज में) नहीं, ऐसे नहीं, सब लोग एक-एक कागज और पेन्सिल ले लें और कुछ लोग नहीं। एक आदमी बिना सोचे कई चीजों के नाम ले, जैसे कमरे और हम लोग सब उस लफ्ज़ को सुनकर एकदम जो उनके मन में आये अपने कागज पर लिख लें, फिर सबके कागज पढ़े जायँ''''

युवक : क्या खेल है, (अपने को सँभालकर) यह तो अच्छी खासी साइक्लोजिकल स्टडी है।''''

गृस्वामिनी : (उत्साह से) मैं कागज़ लाती हूँ''''

[भीतर जाती है और जरा देर में चिट्ठी के लिखने का पैड लेकर आती है। लड़कियाँ इस बीच आपस में कुछ फुसफुसाती हैं। गृहस्वामी निर्विकार बैठा है, केवल युवक अनमना है।]

गृहस्वामिनी : लीजिये''''

[युवक पैड लेकर सबको काग़ज देता है। दोनों लड़कियाँ काग़ज लेती हैं और फ़ौरन रख देती हैं। मोटी रमणी भी काग़ज लेती है और फ़ौरन रख देती है, पर फ़ौरन कहती है।]

मोटी रमणी : मैं····मैं तो नाम लूँगी····

गृहस्वामिनी : (कागज लेती हुई) अरे काग़ज····लाओ बेटी····

[लड़कियाँ झेंपती हुई काग़ज उठा लेती हैं और दो पेंसिलें ले लेती हैं। युवक अपना फ़ाउण्टेन पेन निकालकर गृहस्वामिनी अपनी माता को दे देता है और खाली हाथ खड़ा है।]

मोटी रमणी : तुम भी काग़ज ले लो राजाजी····

युवक : मैं तो नाम लूँगा।

मोटी रमणी : (पेन्सिल उठाते हुए) अच्छा !

युवक : (सबको तैयार देखकर) अच्छा मैं क्या हूँ ? (हँसता है) अच्छा 'कमरा'—(सब लिखते हैं)।

युवक : अच्छा ! 'विजली' (फिर सब लिखते हैं।)

युवक : अच्छा-अच्छा····पैरेम्ब्यूलेटर (फिर सब लिखते हैं।)

युवक : अच्छा····अच्छा अब क्या···अच्छा 'सेक्स'।

गृहस्वामी :
मोटी रमणी : } सेक्स ?

युवक : हाँ, हाँ।

गृहस्वामी : क्या, सेक्स ?

युवक : यह भी लफ्ज़ है। आपने कहा था विना सोचे नाम लो····

(सब लिखते हैं)

युवक : अच्छा बस····

[सबसे पहले लड़कियाँ अपना काग़ज मेज़ पर रखती हैं। सबसे बाद में गृहस्वामी]

मोटी रमणी : (कागज उठाती हुई) मैं पढ़ूँगी (काग़ज उलटती-पलटती है) सबसे पहले मिस्टर सिवल का पर्चा है।

[पर्चा उठाकर। सब गौर से सुनते हैं।]

मकान—ज़िम्मेदारी, ठीक। विजली—क्या लिखा है,

हाँ—दिमाग़-बिल्कुल ठीक, दिमाग़ ने ही तो ऐसी चीजें निकाली हैं। पैरेम्ब्यूलेटर—शादी—वाह, वाह; मिस्टर सिवल (गृह-स्वामी भद्दा झेंपता है) अच्छा, सेक्स—साइन्स, बहुत ख़ूब ! अब किसका काग़ज है, मिसेज़ सिवल का ?

गृहस्वामिनी : मेरा सबसे बाद में पढ़ियेगा।

मोटी रमणी : नहीं, बाद में क्यों ? सभी के तो पढ़े जायेंगे, तो सुनिये।

गृहस्वामिनी : मेरा बाद में पढ़ियेगा।

गृहस्वामी : पढ़ने न दो कुसुम।

मोटी रमणी : अच्छा—कमरा—बाथ-रूम....

गृहस्वामी : बाथ-रूम, बाथ-रूम क्यों ?

युवक : ख़ैर, वह भी तो कमरा है।

गृहस्वामिनी : अच्छा !

मोटी रमणी : बिजली—अन्धेरा।

गृहस्वामी : हैं.......

गृहस्वामिनी : बिजली फेल हो जाती है तो मोमबत्तियाँ नहीं ढूँढ़ी जातीं।

गृहस्वामी : कुसुम यह क्या है....बेबी क्या पैरेम्ब्यूलेटर पर चढ़ने के काबिल है। मैं कहे देता हूँ तुम लड़कों का सत्यानाश किये देती हो।

गृहस्वामिनी : मैंने तो बेबी लिखा था। अपनी बेबी थोड़ी....तुम्हीं ने कहा था बिना सोचे....

मोटी रमणी : अच्छा सेक्स—शाह नज़फ़ रोड।

गृहस्वामी : यह क्या है ? आखिर इसका क्या मतलब ?

गृहस्वामिनी : (अपराधिनी-सी) तुमने कहा था बिना सोचे....

गृहस्वामी : तुम्हारा मतलब क्या था ?

गृहस्वामिनी : कुछ नहीं, मैंने वैसे ही लिख दिया।

गृहस्वामी : वैसे ही। सेक्स—शाह नज़फ़ रोड। वाह-वाह !

युवक : पापा यह तो खेल है। अच्छा अब अगला पढ़िये।

गृहस्वामी : नहीं····इसे साफ़ हो जाने दीजिये····सेक्स शाह नज़फ़ रोड वाह, वाह (उठकर) इसके माने क्या है ?

युवक : पापा यह तो खेल है ।

[मोटी रमणी सब काग़ज रख देती है । लड़कियाँ अपना काग़ज उठा लेती हैं । युवक व्यग्र-सा बैठ जाता है ।]

युवक : मैं कहता था····

गृहस्वामी : कमरा—बाथ-रूम—सेक्स, शाह नज़फ़ रोड, क्या कहना है !

[सब लोग चुपचाप गम्भीर बैठे हैं । केवल युवक कुछ व्यग्र है । पाँच ही मिनट बाद ज़रा-सा पर्दा खिसकाकर नौकर कहता है—मेज़ लगाऊँ हुज़ूर ?]

गृहस्वामिनी : हाँ, हाँ (तेजी से उठकर भीतर चली जाती है । भीतर से उसकी आवाज सुन पड़ती है—बेबी आ गया— नहीं आया अभी ?)

[मोटी रमणी और लड़कियाँ भी उठकर चली जाती हैं । थोड़ी देर बाद गृहस्वामी भी उठकर भीतर चला जाता है । युवक व्यग्र बरामदे की तरफ़, पर बरामदे के पास ही ट्यूटर मिल जाता है और दोनों कमरे में लौट आते हैं]

ट्यूटर : (अपराधी-सा) मैं अपनी डिक्शनरी यहाँ भूल गया था ।

युवक : आप क्या यहीं बैठे थे ?

ट्यूटर : जी हाँ ।

युवक : यहीं बरामदे में ।

ट्यूटर : जी हाँ····

युवक : हूँ····[टहलता है । ट्यूटर सब जगहों में अपनी किताब ढूँढ़ता है ।]

युवक : आज आपसे पापा की बातचीत हुई ?

ट्यूटर : जी हाँ ।

युवक : क्या बातचीत हुई ?

ट्यूटर : कुछ नहीं—उन्होंने कहा कि आनेवाली जेनरेशन चाहे बिल्ली की हो या साँपों की—पर हमसे अच्छी होगी।

युवक : (चौंककर और ट्यूटर के पास जाकर) किसने कहा ?

ट्यूटर : मिस्टर सिवेल ने—

[युवक कुछ देर टहलता रहता है और फिर भीतर चला जाता है। स्टेज पर सिर्फ ट्यूटर रह जाता है। और वह एक कुर्सी पर पर बैठकर एक अधजला सिगरेट निकालकर जलाता है।]

नये मेहमान



उदयशंकर भट्ट
[१९०४–१९६६ ई०]

पात्र

विश्वनाथ
रेवती
प्रमोद
किरण
बाबूलाल
नन्हेमल
आगन्तुक
पड़ोसी
सन्तोष

[गरमी की ऋतु, रात के आठ बजे का समय। कमरे के पूर्व की ओर दो दरवाज़े। दक्षिण का द्वार बाहर आने-जाने के लिए। पश्चिम का द्वार भीतर खुलता है। उत्तर की ओर एक मेज़ है, जिस पर कुछ किताबें और अख़बार रखे हैं। पास ही दो कुर्सियाँ, पश्चिम के द्वार के पास एक पलँग बिछा है। मेज पर रखा हुआ पुराना पंखा चल रहा है, जिससे बहुत कम हवा आ रही है। कमरा बेहद गरम है। मकान एक साधारण गृहस्थ का है। पलँग के पास चार-पाँच साल का एक बच्चा सो रहा है। पंखे की हवा केवल उस बच्चे को लग रही है। फिर भी वह पसीने से तर है, इसीलिए वह कभी-कभी बेचैन हो उठता है। फिर सो जाता है।

कुरता-धोती पहने एक व्यक्ति प्रवेश करता है। पसीने से उसके कपड़े तर हैं। कुरता उतारकर वह खूँटी पर टाँग देता है और हाथ के पंखे से बच्चे को हवा करता है। उसका नाम विश्वनाथ है। उम्र ४५ वर्ष, गठा हुआ शरीर, गेहुँआ रंग, मुख पर गम्भीरता तथा सुसंस्कृति के चिह्न।]

विश्वनाथ : ओफ़, बड़ी गरमी है! (पंखा जोर-जोर से करने लगता है।) इन बन्द मकानों में रहना कितना भयंकर है! मकान है कि भट्ठी!
[पश्चिम की ओर से एक स्त्री प्रवेश करती है।]

रेवती : (आँचल से मुँह का पसीना पोंछती हुई) पत्ता तक नहीं हिल रहा है, जैसे साँस बन्द हो जायेगी। सिर फटा जा रहा है। (सिर दबाती है।)

विश्वनाथ : पानी पीते-पीते पेट फूला जा रहा है, और प्यास है जो कि बुझने का नाम नहीं लेती। अभी चार गिलास पीकर आया हूँ, फिर भी

होंठ सूख रहे हैं। एक गिलास पानी और पिला दो। ठंढा तो क्या होगा !

रेवती : गरम है। आँगन में घड़े में भी तो पानी ठंढा नहीं होता—हवा लगे तब तो ठंढा हो। जाने कब तक इस जेलखाने में सड़ना होगा।

विश्वनाथ : मकान मिलता ही नहीं। आज दो साल से दिन-रात एक करके ढूँढ़ रहा हूँ। हाँ, पानी तो ले आओ, ज़रा गला ही तर कर लूँ।

रेवती : वरफ़ ले आते। पर मरी वरफ़ भी कोई कहाँ तक पिये !

विश्वनाथ : बरफ़ ! बरफ़ का पानी पीने से क्या फ़ायदा ? प्यास जैसी-की-तैसी, बल्कि दुगुनी लगती है। ओफ़ ! लो; पंखा कर लो। बच्चे क्या ऊपर हैं ?

रेवती : रहने दो, तुम्हीं करो। छत इतनी छोटी है कि पूरी खाटें भी तो नहीं आतीं। एक खाट पर दो-दो, तीन-तीन बच्चे सोते हैं, तब भी पूरा नहीं पड़ता।

विश्वनाथ : एक यह पड़ोसी है, निर्दयी, जो खाली छत पड़ी रहने पर भी बच्चों के लिए एक खाट नहीं बिछाने देंगे।

रेवती : वे तो हमें मुसीबत में देखकर प्रसन्न होते हैं, उस दिन मैंने कहा; तो लाला की औरत बोली, "क्या छत तुम्हारे लिए है ? नक़द पचास देते हैं, तब चार खाटों की जगह मिली है। न बाबा, यह नहीं हो सकेगा। मैं खाट नहीं बिछाने दूँगी। सब हवा रुक जायेगी। उन्हें और किसी को सोता देखकर नींद नहीं आती।"

विश्वनाथ : पर बच्चों के सोने में क्या हर्ज़ है ? ज़रा आराम से सो सकेंगे। कहो तो मैं कहूँ ?

रेवती : क्या फ़ायदा ? अगर लाला मान भी लेगा, तो वह दुष्टा नहीं मानेगी। वैसे भी मैं उसकी छत पर बच्चों का अकेला सोना पसन्द नहीं करूँगी, बड़ी डायन औरत है। उसके तो बाल-बच्चे हैं नहीं, कहीं कुछ कर दे, तब ?

विश्वनाथ : फिर जाने दो। मैं नीचे आँगन में सो जाया करूँगा। कमरे में भला क्या सोया जायेगा। मैं कभी-कभी सोचता हूँ, यदि कोई अतिथि आ जाये, तो क्या होगा ?

रेवती : ईश्वर करे इन दिनों कोई मेहमान न आये। मैं तो वैसे ही गरमी के मारे मर रही हूँ। पिछले पन्द्रह दिन से दर्द के मारे सिर फट रहा है। मैं ही जानती हूँ जैसे रोटी बनाती हूँ।

विश्वनाथ : सारे शहर में जैसे आग बरस रही हो। यहाँ की गरमी से तो ईश्वर बचाये। इसलिए गरमियों में यहाँ के सभी सम्पन्न लोग पहाड़ों पर चले जाते हैं।

रेवती : चले जाते होंगे। ग़रीबों की तो मौत है।

[रेवती जाती है। बच्चा गरमी से घबरा उठता है। विश्वनाथ जोर-जोर से पंखा करता है।]

विश्वनाथ : इस सुकुमार बालकों का क्या अपराध है ? इन्होंने क्या बिगाड़ा है ? तमाम शरीर मारे गरमी के उबल उठा है।

[रेवती पानी का गिलास लेकर आती है।]

रेवती : बड़े का तो अभी तक बुरा हाल है। अब भी कभी-कभी देह गरम हो जाता है।

विश्वनाथ : (पानी पीकर) उसने क्या कम बीमारी भोगी है—पूरे तीन महीने तो पड़ा रहा। वह तो कहो मैंने उसे शिमला भेज दिया, नहीं तो न जाने····

रेवती : भगवान् ने रक्षा की। देखा नहीं, सामनेवाली की लडकी को फिर से टाइफ़ाइड हो गया और वह चल बसी। तुम कुछ दिनों की छुट्टी क्यों नहीं ले लेते ? मुझे डर है, कहीं कोई बीमार न पड़ जाये।

विश्वनाथ : छुट्टी कोई दे तब न ! छुट्टी ले भी लूँ तो खर्च चाहिए। खैर, तुम

आज जाकर ऊपर सो जाओ। मैं आँगन में खाट डालकर पड़ा रहूँगा। बच्चे को ले जाओ। यह गरमी में भुन रहा है।

रेवती : यह नहीं हो सकता। मैं नीचे सो जाऊँगी। तुम ऊपर छत पर जाकर सो जाओ। और ऊपर भी क्या हवा है! चारों तरफ़ दीवारें तप रही हैं। तुम्हीं जाओ ऊपर।

विश्वनाथ : यही तो तुम्हारी बुरी आदत है। किसी का कहना न मानोगी, बस अपनी ही हाँके जाओगी। पन्द्रह दिन से सिर में दर्द हो रहा है। मैं कहता हूँ खुली हवा में सो जाओगी, तो तबीयत ठीक हो जायेगी।

रेवती : तुम तो व्यर्थ की ज़िद्द करते हो। भला यहाँ आँगन में तुम्हें नींद आयेगी? बन्द मकान, हवा का नाम नहीं। रात भर नींद न आयेगी। सवेरे काम पर जाना है। जाओ। मेरा क्या है, पड़ी रहूँगी।

विश्वनाथ : नहीं, यह नहीं हो सकता। आज तो तुम्हें ऊपर सोना ही पड़ेगा। वैसे भी मुझे कुछ काम करना है।

रेवती : ऐसी गरमी में क्या काम करोगे? तुम्हें भी न जाने क्या धुन सवार हो जाती है! जाओ, सो जाओ। मैं आँगन में खाट पर इसे लेकर जैसे-तैसे रात काट लूँगी। जाओ।

विश्वनाथ : अच्छा, तुम जानो। मैं तो तुम्हारी भलाई के लिए कह रहा था। मैं ही ऊपर जाता हूँ।

[बाहर से कोई दरवाजा खटखटाता है।]

रेवती : कौन होगा?

विश्वनाथ : न जाने। देखता हूँ।

रेवती : हे भगवान्, कोई मुसीबत न आ जाये।

[बच्चे को पंखा करती है। बच्चा गरमी के मारे घबराकर उठ बैठता है और पानी माँगता है। वह बच्चे को पानी पिलाती है, पंखा करती है। इसी समय दो व्यक्तियों के साथ विश्वनाथ

प्रवेश करता है । रेवती बच्चे को लेकर आँगन में चली जाती है । आगन्तुक एक साधारण बिस्तर तथा एक सन्दूक लेकर कमरे में प्रवेश करते हैं । विश्वनाथ भी पीछे-पीछे आता है । कमीजों के ऊपर काली बंडी, सिर पर सफ़ेद पगड़ियाँ । बड़े की अवस्था पैंतीस और छोटे की चौबीस है । रंग साँवला, बड़े की मूँछें मुँह को घेरे हुए, माथे पर सिलवट । छोटे की अधकटी मूँछें, लम्बा मुख और बड़े-बड़े दाँत । दोनों मैली धोतियाँ पहने हैं । बड़े का नाम नन्हेमल और छोटे का बाबूलाल है । इस हबड़-तबड़ में दोनों बच्चे ऊपर से उतरकर आते हैं, और दरवाजे के पास खड़े होकर आगन्तुकों को देखते हैं ।

विश्वनाथ : (बड़े लड़के से) प्रमोद, ज़रा कुरसी इधर खिसका दो । (दूसरे अतिथि से) आप इधर खाट पर आ जाइये ! ज़रा पंखा तेज़ कर देना, किरण !

[किरण पंखा तेज करता है, किन्तु पंखा वैसे ही चलता है ।]

नन्हेमल : (पगड़ी के पल्ले से मुँह का पसीना पोंछकर उसी से हवा करता हुआ) बड़ी गरमी है । क्या कहें, पंडितजी, पैदल चले आ रहे हैं । कपड़े तो ऐसे हो गये हैं कि निचोड़ लो !

विश्वनाथ : जी, आप लोग····

बाबूलाल : चाचा, मेरे कपड़े निचोड़कर देख लो, एक लोटे से कम पसीना नहीं निकलेगा । धोती ऐसी चर्रा रही है, जैसे पुरानी हो । पिछले दिनों नकद नौ रुपये खर्च करके खरीदी थी ।

नन्हेमल : मोतीराम की दूकान से ली होगी । बड़ा मक्कार है । मैंने भी कुरतों के लिए छः गज़ मलमल मोल ली थी, सवा रुपये गज़ दी, जबकि नत्थामल के यहाँ साढ़े नौ आने गज़ बिक रही थी । पंडितजी, गला सूखा जा रहा है । स्टेशन पर पानी भी नहीं मिला, मन करता है लेमन की पाँच-छः बोतलें पी जाऊँ ।

बाबूलाल : मुझे कोई पिलाकर देखे, दस से कम नहीं पीऊँगा। (बच्चों की ओर देखकर) क्या नाम है तुम्हारा, भाई ?

प्रमोद : प्रमोद।

किरण : किरण।

बाबूलाल : ठंढा-ठंढा पानी पिलाओ दोस्त, प्राण सूखे जा रहे हैं।

विश्वनाथ : देखो प्रमोद, कहीं से बरफ़ मिले तो ले आओ, आप लोग····

नन्हेमल : अपना लोटा कहाँ रखा है ? थैले में ही है न ?

बाबूलाल : बिस्तर में होगा। चाचा ! निकाल लूँ क्या ? और तो और बिस्तर भी पसीने से भींग गया, चाचा ! मैं तो पहले नहाऊँगा, फिर जो होगा देखा जायेगा, हाँ नहीं तो। मुझे नहीं मालूम था कि यहाँ इतनी गरमी है।

नन्हेमल : देखते जाओ। हाँ, साहब !

विश्वनाथ : क्षमा कीजियेगा, आप कहाँ से पधारे हैं ?

नन्हेमल : अरे, आप नहीं जानते ! वह लाला संपतराम हैं न गोटेवाले, वह मेरे चचेरे भाई हैं। क्या बतायें साहब, उन बेचारों का कारबार सब चौपट हो गया, हम लोगों के देखते-देखते वह लाखों के आदमी खाक में मिल गये। बाबू, लो यह मेरी बंडी संदूक में रख दो।

विश्वनाथ : कौन संपतराम ?

बाबूलाल : अरे, वही गोटेवाले। लाओ न, चाचा, ! (सन्दूक खोलकर बंडी रखते हुए) माल-मसाला तो अंटी में है न ?

नन्हेमल : नहीं, जेब में है, बंडी की जेब में। अब डर की क्या बात है ! घर ही तो है। ज़रा बीड़ी का बंडल तो मेरी जेब से निकाल।

बाबूलाल : बीड़ी तो मेरे पास भी है; लो। ज़रा भाई, दियासलाई ले आना।

किरण : अभी लाया।

[जाता है और लौटकर दियासलाई देता है। दोनों बीड़ी पीते हैं]

विश्वनाथ : मैं संपतराम को नहीं जानता।

नन्हेमल : संपतराम को जानने की····क्यों वह तो आपसे मिले हैं, आपकी तो वह····

बाबूलाल : हाँ, उन्होंने कई बार मुझसे कहा है। आपकी तो वह बहुत तारीफ़ करते हैं। पंडितजी, क्या मकान इतना ही बड़ा है?

नन्हेमल : देख नहीं रहे, इसके भी पीछे एक कमरा दिखायी देता है। पंडितजी, इसके पीछे आँगन होगा और ऊपर छत होगी? शहर में तो ऐसे ही मकान होते हैं।

किरण : (विश्वनाथ से) माँ पूछती हैं खाना····

नन्हेमल : क्यों, बाबूलाल? पंडितजी, कष्ट तो होगा, पर तुम जानो खाना तो····

बाबूलाल : बस, एक पूरी और साग।

नन्हेमल : वैसे तो मैं परांठे भी खा लेता हूँ।

बाबूलाल : अरे, खाने की भली चलायी, पेट ही तो भरना है। शहर में आये हैं, तो किसी को तकलीफ़ थोड़े ही देंगे। देखिये पंडितजी, जिसमें आपको आराम हो, हम तो रोटी भी खा लेंगे। कल फिर देखी जायेगी।

नन्हेमल : भूख कब तक नहीं लगेगी; सारा दिन तो हो गया।

बाबूलाल : नहाने का प्रबन्ध तो होगा, पंडितजी?

[प्रमोद बरफ़ का पानी लाता है।]

नन्हेमल : हाँ भैया, ला तो ज़रा, मैं तो डेढ़ लोटा पानी पीऊँगा।

बाबूलाल : उतना ही मैं भी।

[दोनों गट-गट पानी पीते हैं।]

किरण : (विश्वनाथ से धीरे से) फिर खाना?

विश्वनाथ : (इशारे से) ठहर जा ज़रा।

नन्हेमल : (पानी पीकर) आह ! अब जान में जान आयी। सचमुच गरमी में पानी ही तो जान है।

बाबूलाल : पानी भी खूब ठंढा है। वाह भैया, खुश रहो।

नन्हेमल : कितने सीधे लड़के हैं !

बाबूलाल : शहर के हैं न !

विश्वनाथ : क्षमा कीजिये, मैंने आपको····

दोनों : अरे पंडितजी, आप कैसी बातें करते हैं ? हम तो आपके पास के हैं।

विश्वनाथ : आप कहाँ से आये हैं ?

नन्हेमल : बिजनौर से।

विश्वनाथ : (आश्चर्य से) बिजनौर से। बिजनौर में तो····मैं बिजनौर गया हूँ, किन्तु···

नन्हेमल : मैं ज़रा नहाना चाहता हूँ।

बाबूलाल : मैं भी स्नान करूँगा।

विश्वनाथ : पानी तो नल में शायद ही हो, फिर भी देख लो। प्रमोद, इन्हें नीचे नल पर ले जाओ।

बाबूलाल : तब तक खाना भी तैयार हो जायेगा।

[दोनों बाहर निकल जाते हैं, रेवती का प्रवेश।]

रेवती : ये लोग कौन हैं ? जान-पहचान के तो मालूम नहीं पड़ते।

विश्वनाथ : न जाने कौन हैं !

रेवती : पूछ लो न !

विश्वनाथ : क्या पूछ लूँ ? दो-तीन बार पूछा, ठीक-ठीक उत्तर ही नहीं देते।

रेवती : मेरा तो दर्द के मारे सिर फटा जा रहा है, इधर पिछली शिकायत फिर बढ़ती जा रही है। पहले सोते-सोते हाथ-पैर सुन्न हो जाते थे, अब बैठे-ही बैठे हो जाते हैं।

विश्वनाथ : क्या बताऊँ, जीवन में तुम्हें कोई सुख न दे सका। नौकर भी नहीं टिकता है।

रेवती : पानी जो तीन मंज़िल ऊपर चढ़ाना पड़ता है, इसीलिए भाग जाते हैं, और गरमी क्या कम है ! किसी को क्या जरूरत पड़ी है जो गरमी में भुने। यह तो हमारा ही भाग्य है कि चने की तरह भाड़ में भुनते रहते हैं।

विश्वनाथ : क्या किया जाये ?

रेवती : फिर क्या खाना बनाना ही होगा ? पर ये हैं कौन ?

विश्वनाथ : खाना तो बनाना ही पड़ेगा, कोई भी हो, जब आये हैं तो खाना ज़रूर खायेंगे, थोड़ा-सा बना लो।

रेवती : (तुनककर) खाना तो खिलाना ही होगा—तुम भी खूब हो ! भला इस तरह कैसे काम चलेगा ? दर्द के मारे सिर फटा जा रहा है, फिर खाना बनाना इनके लिए और इस समय ! आखिर ये आये कहाँ से हैं ?

विश्वनाथ : कहते हैं बिजनौर से आये हैं।

रेवती : (आश्चर्य से) बिजनौर ! क्या बिजनौर में तुम्हारी जान-पहचान है ? अपनी बिरादरी का तो कोई आदमी वहाँ रहता नहीं है ?

विश्वनाथ : बहुत दिन हुए एक बार काम से बिजनौर गया था, पर तब से अब तो बीस साल हो गये हैं।

रेवती : सोच लो, शायद वहाँ कोई साहित्यिक मित्र हो, उसी ने इन्हें भेजा हो।

विश्वनाथ : ध्यान तो नहीं आता, फिर भी कदाचित् कोई मुझे जानता हो और उसी ने भेजा हो, किसी संपतराम का नाम बता रहे थे, मैं जानता भी नहीं।

रेवती : बड़ी मुश्किल है, मैं खाना नहीं बनाऊँगी, पहले आत्मा फिर परमात्मा; जब शरीर ही ठीक नहीं रहता तो फिर और क्या करूँ ?

विश्वनाथ : क्या कहेंगे कि रात-भर भूखा मारा, बाज़ार से कुछ मँगा दो न !

रेवती : बाज़ार से क्या मुफ़्त में आ जायेगा ? तीन-चार रुपये से कम में

क्या इनका पेट भरेगा, पहले तुम पूछ लो, मैं बाद में खाना बनाऊँगी।

[बाबूलाल का प्रवेश, रेवती का दूसरी ओर जाना]

बाबूलाल : तबीयत अब शान्त हुई है, फिर भी पसीने से नहा गया हूँ। न जाने पण्डितजी, आप यहाँ कैसे रहते हैं! (पंखा करता है।)

विश्वनाथ : आठ-नौ लाख आदमी इस शहर में रहते हैं और छः-सात लाख आदमी इसी तरह के मकानों में रहते हैं।

[ऊपर छत पर शोर मचता है।]

क्या बात है? कैसा झगड़ा है प्रमोद?

प्रमोद : (आकर) उन्होंने दूसरी छत पर हाथ धो लिये, पानी फैल गया, इसीलिए वह पड़ोसी की स्त्री चिल्ला रही है। मैंने कहा, "सवेरे साफ़ करा देंगे, इन्हें मालूम नहीं था।"

विश्वनाथ : तुमने क्यों नहीं बताया कि हाथ दूसरी जगह धोओ?

प्रमोद : मैं पानी पीने अपनी छत पर चला गया था। वहाँ उषा रोने लगी। उसे चुप कराया; पानी पिलाया और पंखा करता रहा।

विश्वनाथ : चलो कोई बात नहीं। उनसे कह दो कि सवेरे साफ़ करा देंगे।

[नेपथ्य में—'अरे बाबू, मेरी धोती देना, मैं भी नहा लूँ।']

बाबूलाल : लाया चाचा! (जाता है।)

[पड़ोसी का तेजी से प्रवेश]

पड़ोसी : देखिये साहब, मेहमान आपके होंगे, मेरे नहीं। मैं यह नहीं बर्दाश्त कर सकता कि मेरी छत पर इस तरह गन्दा पानी फैलाया जाये। सारी छत गन्दी कर दी।

विश्वनाथ : वाकई गलती हो गयी। कल सवेरे साफ़ करा दूँगा।

पड़ोसी : आपसे रोज ही ग़लती होती है।

विश्वनाथ : अनजान आदमी से ग़लती हो ही जाती है। उसे क्षमा कर देना चाहिए। कल से ऐसा नहीं होगा।

पड़ोसी : होगा क्यों नहीं, रोज़ होगा। रोज़ होता है। अभी उसी दिन आपके एक और मेहमान ने पानी फैला दिया था। फिर हमारी खाट बिछाकर लेट गया था।

विश्वनाथ : मैंने समझा तो दिया था। फिर तो वह आदमी खाट पर नहीं लेटा था।

पड़ोसी : तो आपके यहाँ इतने मेहमान आते ही क्यों हैं ? यदि मेहमान बुलाने हों तो बड़ा-सा मकान लो।

विश्वनाथ : यह भी आपने खूब कहा कि इतने मेहमान क्यों आते हैं ! अरे भाई, मेहमानों को क्या मैं बुलाता हूँ ? खैर, आज क्षमा करें, अब आगे ऐसा नहीं होगा।

पड़ोसी : कहाँ तक कोई क्षमा करे ! क्षमा, क्षमा ! बस एक ही बात याद कर ली है क्षमा !

[चला जाता है, दोनों अतिथि आते हैं।]

दोनों : क्या बात है ?

विश्वनाथ : कुछ नहीं, आप धोतियाँ छज्जे पर सुखा दें।

नन्हेमल : ले बाबू, डाल तो दे, और ला, बीड़ी निकाल !

बाबूलाल : मेरी ज़ेब से ले लो। (चला जाता है।)

नन्हेमल : सचमुच हमारी वजह से आपको बड़ा कष्ट हुआ। (बैठकर बीड़ी सुलगाता है।) भैया, ज़रा, ज़रा-सा पानी और पिला दो ! उफ़ बड़ी गरमी है। हाँ साहब, खाने में क्या देर-दार है ? बात यह है कि नींद बड़े जोर से आ रही है।

विश्वनाथ : देखिये, मैं आपसे एक-दो बातें पूछना चाहता हूँ।

दोनों : हाँ-हाँ पूछिये, मालूम होता है आपने हमें पहचाना नहीं है।

विश्वनाथ : जी हाँ, बात यह है कि मैं बिजनौर गया तो अवश्य हूँ, पर बहुत दिन हो गये हैं।

नन्हेमल : तो क्या हर्ज़ है; कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है। हम तो आपको जानते हैं। कई बार आपको देखा भी है।

बाबूलाल : लाला भानामल की लड़की की शादी में आप नजीबाबाद गये थे?

नन्हेमल : अरे, दूर क्यों जाते हो? अभी पिछले साल आप मुरादाबाद गये थे।

विश्वनाथ : हाँ, पिछले साल मैं लखनऊ जाते हुए दो दिन के लिए जगदीश-प्रसाद के पास मुरादाबाद ठहरा था।

नन्हेमल : हाँ, सेठ जगदीशप्रसाद के यहाँ हमने आपको देखा था।

बाबूलाल : उनकी आटे की मिल है, क्या कहने हैं उनके। बड़े आदमी हैं। हम उन्हीं के रिश्तेदार हैं।

विश्वनाथ : पर उनका तो प्रेस है।

नन्हेमल : प्रेस भी होगा। उनकी एक बड़ी मिल भी है। अब एक और गन्ने की मिल बिजनौर में खुल रही है।

बाबूलाल : अगले महीने तक खुल जायेगी। हाँ भैया, पानी ले आये, लो चाचा, पहले तुम पी लो।

विश्वनाथ : तो आप कोई चिट्ठी-विट्ठी तो नहीं लाये हैं?

दोनों : (सकपकाकर) चिट्ठी-विट्ठी तो नहीं लाये हैं।

नन्हेमल : संपतराम ने कहा था कि स्टेशन से उतरकर सीधे रेलवे रोड चले जाना। वहाँ कृष्णा गली में वह रहते हैं।

विश्वनाथ : पर कृष्णा गली तो यहाँ छः हैं। कौन-सी गली में बताया था?

नन्हेमल : छः हैं! बहुत बड़ा शहर है साहब! हमें तो यह मालूम नहीं है, शायद बताया हो। याद ही नहीं रहा।

विश्वनाथ : (खीझकर) जिसके यहाँ आपको जाना है, उसका नाम भी बताया होगा?

बाबूलाल : क्या नाम था चाचा?

नन्हेमल : नाम तो याद नहीं आता। ज़रा ठहरिये, सोच लूँ।

बाबूलाल : अरे चाचा, कविराज या कवि बताया था ! मैं उस समय नहीं था। सामान लेने घर गया था। तुम्हीं ने रेल में बताया था।

नन्हेमल : हाँ साहब, कविराज बताया था। आप तो बेकार शक में पड़े हैं। हम कोई चोर थोड़े ही हैं।

बाबूलाल : चोर छिपे थोड़े ही रहते हैं। पण्डितजी, क्या बतायें; हमारे घर चलकर देख लें, तो पता लगेगा कि हम भी····

नन्हेमल : चुप, एक बीड़ी और निकाल बाबू।

बाबूलाल : यह लो !

विश्वनाथ : लेकिन मैं कविराज तो नहीं हूँ।

दोनों : (चिल्लाकर) तो कवि ही बताया होगा, साहब !

नन्हेमल : हमें याद नहीं रहा। हमें तो जो पता दिया था उसी के सहारे आ गये। नीचे आवाज़ लगायी और आप मिल गये, ऊपर चढ़ आये। पहले हमने सोचा होटल या धर्मशाला में ठहर जायें। फ़िर सोचा घर के ही तो हैं। चलो घर ही चलें।

विश्वनाथ : जिनके यहाँ आपको जाना था, वह काम क्या करते हैं ?

नन्हेमल : काम ? क्या काम बताया था बाबू ?

बाबूलाल : मेरे सामने तो कोई बात ही नहीं हुई। मैं तो सामान लेने चला गया था। आप तो पण्डितजी, शायद वैद्य हैं ?

नन्हेमल : हाँ, याद आया। बताया था वैद्य हैं।

विश्वनाथ : पर मैं तो वैद्य नहीं हूँ।

प्रमोद : पिछली गली में एक कविराज वैद्य रहते हैं।

विश्वनाथ : हाँ-हाँ ठीक, कहीं आप कविराज रामलाल वैद्य के यहाँ तो नहीं आये हैं ?

दोनों : (उछलकर) अरे हाँ, वही तो कविराज रामलाल।

विश्वनाथ : शायद वह उधर के हैं भी !

नन्हेमल : ठीक है साहब, ठीक है, वही हैं, मैं भी सोच रहा था कि आप न संपतराम को जानते हैं, न जगदीशप्रसाद को—(प्रमोद से) कहाँ है उन कविराज का घर ?

विश्वनाथ : जाओ; इन्हें उनका मकान बता दो । मैं भीतर हो आऊँ ।

दोनों : चलो, जल्दी चलो भैया ! अच्छा साहब, राम-राम !

विश्वनाथ : (भीतर से ही) राम-राम !

[सब चले जाते हैं। कुछ देर बाद विश्वनाथ का पत्नी-सहित प्रवेश]

रेवती : अब जान-में-जान आयी । हाय, सिर फटा जा रहा है !

[नीचे से आवाज आती है ।]

[नेपथ्य में—'भले आदमी, न जाने कहाँ मकान लिया है—ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आधी रात होने को आयी है ।]

रेवती : फिर, फिर अरे (प्रसन्न होकर) अरे भैया हैं ! आओ-आओ, तुमने तो खबर भी न दी ।

आगन्तुक : रेवती । (दोनों मिलते हैं। विश्वनाथ से) पिछले चार घण्टे से बराबर मकान खोज रहा हूँ । क्या मेरा तार नहीं मिला ?

विश्वनाथ : नहीं तो ! कब तार दिया था ?

आगन्तुक : कल ही तो झाँसी से दिया था । सोचता था कि ठीक समय पर मिल जायेगा । ओह, बड़ी परेशानी हुई ।

रेवती : लो, कपड़े उतार डालो । पंखा करती हूँ । अरे प्रमोद, जा जल्दी से बरफ़ तो ला । मामाजी को ठंढा पानी पिला । और देख, नुक्कड़ पर हलवाई की दूकान खुली हो तो····

आगन्तुक : भाई, बहुत बड़ा शहर है । वह तो कहो, मैं भी ढूँढ़कर ही रहा, नहीं तो न जाने कहाँ होटल या धर्मशाला में रहना पड़ता । बड़ी गरमी है । मैं ज़रा बाथरूम जाना चाहता हूँ ।

विश्वनाथ : हाँ-हाँ अवश्य, सामने चले जाइये ।

आगन्तुक : एक बार तो जी में आया कि सामने होटल में ठहर जाऊँ। शायद रात को आप लोगों को कोई कष्ट हो !

रेवती : ऐसा क्यों सोचते हैं आप ! कष्ट काहे का ! यह तो हम लोगों का कर्तव्य था। अच्छा तुम तैयार हो, मैं खाना बनाती हूँ।

आगन्तुक : भई देखो, इस समय खाना-वाना रहने दो। मैं पानी पीकर सो जाऊँगा। वैसे मुझे भूख भी नहीं है।

रेवती : (जाती हुई लौटकर) कैसी बातें करते हो भैया ! मैं अभी खाना बनाती हूँ।

आगन्तुक : इतनी गरमी में ! रहने दो न !

विश्वनाथ : तुम बाथरूम तो जाओ ! (आगन्तुक जाता है।) रेवती से कहो, अब ?

रेवती : अब क्या—मैं खाना बनाऊँगी। भैया भूखे नहीं सो सकते।

विश्वनाथ : (हँसकर) हाँ, ऐसा न हुआ तो कदाचित् और····सिर का दर्द····

रेवती : यहाँ कर्तव्य के साथ प्रेम है।

विश्वनाथ : दिखावा भी।

रेवती : वह भी, किन्तु अपनत्व तो है। तुम मिठाई मँगवाओ, मैं पूरियाँ तले देती हूँ। (छत की तरफ़) सन्तोष, सन्तोष, उठ तो सही। देख मामाजी आये हैं। जल्दी आ। [गाती है] 'आज मेरे घर आये भैया !'



लक्ष्मी का स्वागत



उपेन्द्रनाथ अश्क

[१९१० ई०

पात्र

रौशन—एक शिक्षित युवक
सुरेन्द्र—उसका मित्र
भाषी—उसका छोटा भाई
पिता—रौशन का बाप
माँ—रौशन की माता
अरुण—रौशन का बीमार बच्चा
डॉक्टर—

स्थान

[जिला जालन्धर के इलाके में मध्यम श्रेणी के एक मकान का दालान ।]

समय

नौ-दस बजे सुबह

[दालान में सामने की दीवार से मेज़ लगी है, जिसके इस ओर एक पुरानी कुर्सी पड़ी है, मेज पर बच्चों की किताबें बिखरी पड़ी हैं।

दीवार के दायें कोने में एक खिड़की है, जिस पर मामूली छींट का पर्दा लगा है। बायें कोने में एक दरवाज़ा है, जो सीढ़ियों में खुलता है।

दायीं दीवार में एक दरवाज़ा है जो उस कमरे में खुलता है, जहाँ इस समय रौशन का बच्चा अरुण बीमार पड़ा है।

दीवारों पर बिना फ्रेम के सस्ती तस्वीरें मेखों से जड़ी हुई हैं। छत पर काग़ज का पुराना फ़ानुस लटक रहा है।

पर्दा उठने पर सुरेन्द्र खिड़की से बाहर की ओर देख रहा है। बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही है। हवा की सायँ-सायँ और वर्षा के थपेड़े सुनायी देते हैं।

कुछ क्षण बाद खिड़की का पर्दा छोड़कर कमरे में घूमता हैं। फिर जाकर खिड़की के पास खड़ा हो जाता है और पर्दा हटाकर बाहर देखता है।]

[बीमार के कमरे में रौशनलाल प्रवेश करता है।]

रौशन : (दरवाजे को धीरे से बन्द करके) डॉक्टर अभी नहीं आया ?

सुरेन्द्र : नहीं।

रौशन : वर्षा हो रही है ?

सुरेन्द्र : मूसलाधार ! जल-थल एक हो रहे हैं।

रौशन : शायद ओले पड़ रहे हैं।

सुरेन्द्र : हाँ, ओले भी पड़ रहे हैं।

रौशन : भायी पहुँच गया होगा ?

सुरेन्द : हाँ, पहुँच ही गया होगा। यह वर्षा और ओले ! नदियाँ वह रही होंगी बाजारों में !

रौशन : पर अब तक आ जाना चाहिए था उन्हें। (स्वयं बढ़कर खिड़की के पर्दे को हटाकर देखता है, फिर पर्दा छोड़कर वापस आ जाता है—घुटे-घुटे स्वर में) अरुण की तबियत गिर रही है !

सुरेन्द्र : (चुप)

रौशन : (उसी आवाज में उसकी साँस जैसे हर घड़ी रुकती जा रही है; उसका गला जैसे बन्द होता जा रहा है; उसकी आँखें खुली हैं; पर वह कुछ कह नहीं सकता। बेहोश-सा, असहाय-सा, चुपचाप विटर-विटर ताक रहा है। आँखें लाल और शरीर गर्म। सुरेन्द्र, जब वह साँस लेता है तो उसे बड़ा ही कष्ट होता है ! (दीर्घ निःश्वास छोड़ता है।) न जाने क्या होने को है सुरेन्द्र ?

सुरेन्द्र : हौसला करो ! अभी डॉक्टर आ जायगा। देखो, दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी है।

[दोनों कुछ क्षण तक सुनते हैं। हवा की सायँ-सायँ।]

रौशन : नहीं, कोई नहीं, हवा है।

सुरेन्द्र : (सुनकर) यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी।

[रौशन बढ़कर खिड़की से देखता है, फिर वापस आ जाता है।]

रौशन : सामने के मकान का दरवाज़ा खटखटाया जा रहा है।

[बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र कुर्सी से पीठ लगाये छत में हिलते हुए फ़ानूस को देख रहा है।]

रौशन : (घूमते हुए जैसे अपने आप) यह मामूली ज्वर नहीं, गले का यह कष्ट साधारण नहीं, (सहसा सुरेन्द्र के पास रुककर) मेरा तो दिल डर रहा है सुरेन्द्र, कहीं अपनी माँ की भाँति अरुण भी तो मुझे धोखा न दे जायगा ? (गला भर आता है) तुमने उसे नहीं देखा, साँस लेने में उसे कितना कष्ट हो रहा है !

[हवा की सायँ-सायँ और वर्षा के थपेड़े।]

यह वर्षा, यह आँधी, यह मेरे मन में होल पैदा कर रहे हैं। कुछ अनिष्ट होने को है। प्रकृति का यह भयानक खेल, मौत की ये आवाज़ें........

[बिजली ज़ोर से कड़क उठती है। बादल गरजते हैं और मकानों के किवाड़ खड़खड़ा उठते हैं।]

(रसोईघर से माँ की आवाज़)—रौशी, दरवाज़ा खोल आओ। देखो शायद डॉक्टर आया है।

[रौशन सुरेन्द्र की ओर देखता है।]

सुरेन्द्र : मैं जाता हूँ अभी।

[तेज़ी से जाता है। रौशन बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र के साथ डॉक्टर और भाषी प्रवेश करते हैं। भाषी के हाथ में इंजेक्शन का सामान है।]

डॉक्टर : क्या हाल है बच्चे का ?

[बरसाती उतारकर खूँटी पर टाँगता है और रूमाल से मुँह पोंछता है।]

रौशन : आपको भाषी ने बताया होगा डॉक्टरसाहब ! मेरा तो जैसे हौसला टूट रहा है। कल सुबह उसे कुछ ज्वर हुआ। साँस कुछ कष्ट से आने लगी; किन्तु आज तो वह अचेत-सा पड़ा, जैसे अन्तिम साँसों को जाने से रोक रखने की प्रबल कोशिश कर रहा है।

डॉक्टर : चलो, देखता हूँ।

[सब बीमार के कमरे में चले जाते हैं। बाहर दरवाजे के खट-खटाने की आवाज़ आती है। माँ तेजी से प्रवेश करती है।]

माँ : भाषी ! भाषी !

[बीमार के कमरे से भाषी आता है।]

देखो भाषी बाहर कौन दरवाज़ा खटखटा रहा है। (आँखों में चमक आ जाती है) मेरा तो ख्याल है, वही लोग आये हैं। मैंने रसोईघर की खिड़की से देखा है। टपकते हुए छाते लिये और बरसातियाँ पहने............

भाषी : वहीं कौन ?

माँ : वही, जो सरला के मरने पर अपनी लड़की के लिए कह रहे थे। बड़े भले आदमी हैं। सुनती हूँ, सियालकोट में उनका बड़ा काम है। इतनी वर्षा में भी............

[जोर-जोर से कुंडी खटखटाने की निरन्तर आवाज़ ! भाषी भागकर जाता है, माँ खिड़की में जा खड़ी होती है। बीमार के कमरे का दरवाज़ा खुलता है, सुरेन्द्र तेजी से प्रवेश करता है।]

सुरेन्द्र : भाषी कहाँ है ?

माँ : बाहर कोई आया है, कुण्डी खोलने गया है।

[फिर तेज़ी से वापस चला जाता है। माँ एक बार पर्दा उठाकर खिड़की से झाँकती है, फिर खुशी-खुशी कमरे में टहलती है। भाषी प्रवेश करता है।]

माँ : कौन है ?

भाषी : शायद वही हैं। नीचे बैठा आया हूँ, पिताजी के पास, तुम चलो।

माँ : क्यों ?

भाषी : उनके साथ एक स्त्री भी है।

[माँ जल्दी-जल्दी चली जाती है। सुरेन्द्र कमरे का दरवाज़ा ज़रा-सा खोलकर देखता है और आवाज़ देता है।]

सुरेन्द्र : भाषी !

भाषी : हाँ।

सुरेन्द्र : इधर आओ।

[भाषी कमरे में चला जाता है। कुछ क्षण के लिए मौन छा जाता है। केवल बाहर मेह बरसने और हवा के थपेड़ों से किवाड़ों के खड़खड़ाने का शोर कमरे में आता है। हवा से फ़ानूस सरसराता है। कुछ क्षण के बाद डॉक्टर, सुरेन्द्र, रौशन और भाषी बाहर आते हैं।]

रौशन : अब बताइये डॉक्टरसाहब !

डॉक्टर : (अत्यधिक गम्भीरता से) बच्चे की हालत नाजुक है।

रौशन : बहुत नाजुक है ?

डॉक्टर : हाँ !

रौशन : कुछ नहीं हो सकता ?

डॉक्टर : भगवान् के घर कुछ कमी नहीं, पर आपने बहुत देर कर दी। डिफ्थीरिया[1] में तत्काल डॉक्टर को बुलाना चाहिए।

रौशन : हमें मालूम ही नहीं हुआ डॉक्टरसाहब ! कल साँझ को इसे ज्वर हो आया, गले में भी इसे बहुत कष्ट लगा है। मैं डॉक्टर जीवराम के पास ले गया—वही जो हमारे बाजार में हैं—उन्होंने गले में आयोडीन-ग्लिसरीन पेंट कर दी और फ़ीवर मिक्स्चर बना दिया। दो ख़ूराकें दीं, इसकी हालत तो पहले से भी खराब हो गयी। शाम को यह कुछ अचेत-सा हो गया। मैं भागा-भागा आपके पास गया, पर आप मिले नहीं, तब रात में भाषी को भेजा, फिर भी आप न मिले। और फिर यह झड़ी लग गयी—ओले, आँधी और झक्कड़ ! जैसे प्रलयके बन्धन ढीले हो गये हों।

[बाहर की हवा सायँ-सायँ सुनायी देती है। डॉक्टर सिर नीचा किये खड़ा है, रौशन उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर ताक रहा है; सुरेन्द्र मेज़ के एक कोने पर बैठा छत की ओर जोर-जोर से हिलते फ़ानूस को देख रहा है।]

डॉक्टर : (सिर उठाता है) मैंने इंजेक्शन दे दिया है। भाषी ने जो लक्षण बताये थे, उन्हें सुनकर मैं बचाव के तौर पर इंजेक्शन का सामान ले आया था और मेरा ख्याल ठीक निकला। भाषी को मेरे साथ

---

१. डिफ्थीरिया—गले का संक्रामक रोग जिसमें साँस बन्द हो जाने से मृत्यु हो जाती है। मांससंतानिका।

भेज दो। मैं इसे नुस्खा लिख देता हूँ। यहीं बाज़ार से दवाई बनवा लेना, मेरी जगह तो दूर है। पंद्रह-पंद्रह मिनट के बाद कंठ में दवाई की दो-चार बूँदे, और एक घण्टे में मुझे सूचित करना। यदि एक घण्टे तक यह ठीक रहा तो मैं एक इंजेक्शन और दे जाऊँगा। कोई दूसरा इलाज़ भी तो नहीं!

रौशन : डॉक्टरसाहब, (आवाज भर आती है।)

डॉक्टर : घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी शुश्रूषा करो, शायद........

रौशन : मैं अपनी ओर से कोई कसर न उठा रखूँगा डॉक्टरसाहब। सुरेन्द्र, देखो तुम मेरे पास रहना, जाना नहीं, यह घर इस बच्चे के लिए वीराना है। ये लोग इसका जीवन नहीं चाहते, बड़ा रिश्ता पाने के मार्ग में इसे रोड़ा समझते हैं। इसकी मृत्यु चाहते हैं........

सुरेन्द्र : क्या कहते हो रौशन....

डॉक्टर : रौशनलाल....!

रौशन : आप नहीं जानते डॉक्टरसाहब! ये सब लोग हृदयहीन हैं, आपको मालूम नहीं। इधर मैं अपनी पत्नी का दाह-कर्म करके आया था, उधर ये दूसरी जगह शादी के लिए सगुन लेने की सोच रहे थे।

सुरेन्द्र : यह तो दुनिया का व्यवहार है भाई!

रौशन : दुनिया का व्यवहार—इतना निष्ठुर, इतना निर्मम, इतना क्रूर! नहीं जानता कि जो मर जाती है, वह भी किसी की लड़की होती है, किसी के लाड़-प्यार में पली होती है, फिर........(डॉक्टर को जाते देखकर) आप जा रहे हैं डॉक्टरसाहब! (भाषो से) देखो भाषो, जल्दी आना, बस, जैसे यहीं खड़े हो।

[डॉक्टर और भाषो चले जाते हैं।]

रौशन : सुरेन्द्र, क्या होने को है? क्या अरुण भी मुझे सरला की भाँति

छोड़कर चला जायगा ! मैं तो उसे देखकर सरला का दुःख भूल चुका था, लेकिन अब........?

[हाथों से चेहरा छिपा लेता है ।]

सुरेन्द्र : (उसे धकेलकर कमरे की ओर ले जाता हुआ) पागल न बनो; चलो, उसके घर में क्या कमी है ? वह चाहे तो मुर्दों में जान आ जाय; मरणासन्न उठकर खड़े हो जायें ।

रौशन : (भर्राये गले से) मुझे उस पर कोई विश्वास नहीं रहा । उसका कोई भरोसा नहीं—निर्मम और क्रूर ! उसका काम सताये हुओं को और सताना है, जले हुओं को और जलाना है ।

सुरेन्द्र : दीवाने न बनो, चलो, उसके सिरहाने चलकर बैठो ! मैं देखता हूँ, भाषी अभी क्यों नहीं आया ?

[उसे दरवाजे के अन्दर धकेलकर मुड़ता है । दायीं ओर के दरवाजे से माँ प्रवेश करती है ।]

माँ : किधर चले ?

सुरेन्द्र : जरा भापी को देखने जा रहा था ।

माँ : क्या हाल है अरुण का ?

सुरेन्द्र : उसकी हालत खराब हो रही है ।

माँ : हमने तो बाबा बोलना ही छोड़ दिया है । ये डॉक्टर जो न करें थोड़ा है । बहू के मामले में भी तो यही बात हुई थी । अच्छीभली हकीम की दवा हो रही थी । आराम हो रहा था । जिगर का बुखार ही तो था, दो-दो वर्ष भी रहता हैं । पर यह डॉक्टरों को लाये बिना न माना । और उन्होंने दे दिया दिक का फ़तवा, हमने तो भाई इसीलिए कुछ कहना-सुनना ही छोड़ दिया है । आखिर मैंने भी तो पाँच-पाँच बच्चे पाले हैं । बीमारियाँ हुईं, कष्ट हुए, डॉक्टरों के पीछे भागी-भागी नहीं फिरी । क्या बताया डॉक्टर ने ?

सुरेन्द्र : डिफ्थीरिया !

माँ : क्या ?........

सुरेन्द्र : बड़ी भयानक बीमारी है माँजी ! अच्छा-भला आदमी चन्द घंटों के अन्दर समाप्त हो जाता है।

माँ : राम राम ! तुम लोगों ने क्या कुछ-का-कुछ बना डाला। उसे ज़रा ज्वर हो गया है, छाती जम गयी होगी, बस मैं घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता, पर मुझे कोई हाथ लगाने दे तब न ! हमें तो वह कहता है, बच्चे से प्यार ही नहीं

सुरेन्द्र : नहीं नहीं, यह कैसे हो सकता है ! आप से अधिक वह किसे प्रिय होगा !

[चलने को उद्यत होता है।]

माँ : सुनो !

(सुरेन्द्र रुक जाता है।)

माँ : मैं तुमसे एक बात करने आयी थी, तुम उसके मित्र हो न; उसे समझा सकते हो।

सुरेन्द्र : कहिये ?

माँ : आज वे फिर आये हैं।

सुरेन्द्र : वे कौन ?

माँ : सियालकोट के एक व्यापारी हैं। जब सरला का चौथा हुआ था तो उस दिन रौशी के लिए अपनी लड़की का सगुन लेकर आये थे। पर उसे न जाने क्या हो गया है, किसी की सुनता ही नहीं, सामने ही न आया। हारकर बेचारे चले गये। रौशी के पिता ने उन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद वे आये हैं।

सुरेन्द्र : माँजी........

माँ : तुम जानते हो बच्चा, दुनिया-जहान का यह नियम है। गिरे हुए

मकान की नींव पर ही दूसरा मकान खड़ा होता है। रामप्रताप को ही देख लो, अभी दाह-कर्म-संस्कार के बाद नहाकर साफ़ा भी न निचोड़ा था कि नकोदरवालों ने सगुन दे दिया, एक महीने के बाद ब्याह भी हो गया और अब तो सुनते हैं, बच्चा भी होनेवाला है।

सुरेन्द्र : माँजी, रामप्रताप और रौशन में कुछ अन्तर है ?

माँ : यही न, कि वह माता-पिता का आज्ञाकारी है और यह पढ़-लिखकर अवज्ञा करना सीख गया है। बेटा, अभी तो चार नाते आते हैं, फिर देर हो गयी तो इधर कोई मुँह भी न करेगा। लोग सौ-सौ लांछन लगायेंगे और फिर कौन ऐसा क्वाँरा है·······

सुरेन्द्र : माँजी, तुम्हारा रौशन बिन-ब्याहा न रहेगा, इसका मैं विश्वास दिलाता हूँ :

माँ : यह ठीक है बेटा, पर अब ये भले आदमी मिलते हैं। घर अच्छा है, लड़की अच्छी है, सुशील है, सुन्दर है, सुशिक्षिता है और सबसे बढ़कर यह है कि ये लोग बड़े अच्छे हैं। लड़की की बड़ी बहन से अभी मैंने बातें की हैं। ऐसी सलीकेवाली है कि क्या कहूँ! बोलती है तो फूल तोलती है। जिसकी बड़ी बहन ऐसी है वह स्वयं कैसे न अच्छी होगी ?

सुरेन्द्र : माँजी, अरुण की दशा शोचनीय है। जाकर देखो तो मालूम हो।

माँ : बेटा, अब ये भी तो इतनी दूर से आये हैं—इस आँधी और तूफ़ान में! कैसे इन्हें निराश लौटा दें ?

सुरेन्द्र : तो आखिर आप मुझसे क्या चाहती हैं ?

माँ : तुम्हारा वह मित्र है, उनसे जाकर कहो कि ज़रा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। जो कुछ वे पूछते हों, उन्हें बता दे, इतने में मैं लड़के के पास बैठती हूँ।

सुरेन्द्र : मुझसे यह नहीं हो सकता माँजी! बच्चे की दशा ठीक नहीं,

बल्कि चिन्ताजनक है। आप नहीं जानतीं, वह उसे कितना प्यार करता है। भाभी के बाद उसका सब ध्यान उसी में केन्द्रित हो गया है और इस समय जब बच्चे की दशा ठीक नहीं, मैं उससे यह सब कैसे कहूँ ?

[बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है। रौशन प्रवेश करता है—बाल बिखरे हुए, चेहरा उतरा हुआ, आँख फटी-फटी-सी !]

रौशन : सुरेन्द्र, तुम अभी यहीं खड़े हो ? भगवान् के लिए जाओ; जल्दी जाओ ! बरसाती ले जाओ, नीचे से छतरी ले जाओ, देखो भाषी अभी आया क्यों नहीं ! अरुण तो·······

(सीढ़ियों से) : मैं आ गया भाईसाहब ?

[भाषी दवाई की शीशी लिये हुए आता है। सुरेन्द्र और भाषी बीमार के कमरे में जाते हैं। माँ रौशन के समीप आती है।]

माँ : क्या बात है, घबराये हुए क्यों हो ?

रौशन : माँ, उसे डिफ्थीरिया हो गया है।

माँ : मुझे सुरेन्द्र ने बताया। (असन्तोष से सिर हिलाकर) तुम लोगों ने मिल-मिलाकर········

रौशन : क्या कह रही हो ? तुम्हें स्वयं अगर किसी बात का पता नहीं तो दूसरों को तो कुछ करने दो।

माँ : चलो, मैं चलकर देखती हूँ।

(बढ़ती है।)

रौशन : (रास्ता रोकता है।) नहीं; तुम मत जाओ। उसे बेहद कष्ट है; साँस उसे मुश्किल से आती है; उसका दम उखड़ रहा है, तुम कोई घुट्टी-वुट्टी की बात करोगी।

(जाना चाहता है।)

माँ : सुनो !

(रौशन मुड़ता है। माँ असमंजस में है।)

रौशन : कहो !

माँ : (चुप)

रौशन : जल्दी कहो, मुझे जाना है।

माँ : वे फिर आये हैं।

रौशन : वे कौन ?

माँ : वही सियालकोटवाले !

रौशन : (क्रोध से) उनसे कहो, जहाँ से आये हैं वहीं चले जायँ।

[जाना चाहता है।]

माँ : रौशी।

रौशन : मैं नहीं जानता, मैं पागल हूँ या आप ! क्या आप मेरी सूरत नहीं देखतीं। क्या आपको इस पर कुछ लिखा दिखायी नहीं देता ? शादी, शादी, शादी ! क्या शादी ही दुनिया में सब कुछ है ? घर में बच्चा मर रहा है और तुम्हें शादी की सूझ रही है ! आखिर आप लोगों को हो क्या गया है ? क्या वह मेरी पत्नी न थी; क्या वह.......

माँ : शोर मत मचाओ ! हम तुम्हारे ही लाभ की बात कर रहे हैः रामप्रताप........

रौशन : (चीखकर) तुम रामप्रताप को मुझसे मिलाती हो ! अपढ़, अशिक्षित, गँवार ! उसके दिल कहाँ है ? महसूस करने का माद्दा कहाँ है ? वह जानवर है।

माँ : तुम्हारे पिता ने भी तो पहली पत्नी की मृत्यु के दूसरे महीने ही विवाह कर लिया था........

रौशन : वे........माँ जाओ, मैं क्या कहने लगा था।

[तेजी से मुड़कर कमरे में चला जाता है। दरवाजा खट से बन्द कर लेता है। हाथ में हुक्का लिये हुए खखारते-खखारते रौशन के पिता प्रवेश करते हैं।]

पिता : क्या कहता है रौशन ?

माँ : वह तो बात भी नहीं सुनता, जाने बच्चे की तबियत बहुत खराब है।

पिता : (खखारकर) एक दिन में ही इतनी क्या खराब हो गयी ? मैं जानता हूँ, यह सब बहानेबाजी है।

(जोर से आवाज देता है)—रौशी !

[खिड़कियों पर वायु के थपेड़ों की आवाज़ ।]

(फिर आवाज देता है)—रौशी !

[रौशन दरवाजा खोलकर झाँकता है। चेहरा पहले से भी उतरा हुआ है, आँखें रुँआसी और निगाहों में करुणा ।]

रौशन : (अत्यन्त थके स्वर से) धीरे बोलें आप, क्या शोर मचा रहे हैं !

पिता : इधर आओ !

रौशन : मेरे पास समय नहीं !

पिता : (चीखकर) समय नहीं ?

रौशन : धीरे बोलें आप !

पिता : मैं कहता हूँ, इतनी दूर से आये हैं, तुम्हें देखना चाहते हैं, तुम जाकर उनसे ज़रा एक-दो मिनट बात कर लो।

रौशन : मैं नहीं जा सकता !

पिता : नहीं जा सकता ?

रौशन : नहीं जा सकता !

पिता : तो मैं सगुन ले रहा हूँ। इस वर्षा, आँधी और तूफान में उन्हें अपने घर से निराश नहीं लौटा सकता। घर आयी लक्ष्मी का निरादर नहीं कर सकता।

[रोने की तरह रौशन हँसता है।]

रौशन : हाँ, आप लक्ष्मी का स्वागत कीजिये।

[खट से दरवाजा बन्द कर लेता है।]

पिता : (रौशन की माँ से) इस एक महीने में हमने कितनों को इन्कार

नहीं किया, किन्तु इनको कैसे 'ना' कर दें ? सियालकोट में इनकी वड़ी भारी फ़र्म है। मैंने महीनेभर में अच्छी तरह पता लगा लिया है। हज़ारों का तो इनके यहाँ लेन-देन है।

माँ : वहू की वीमारी का पूछते होंगे ?

पिता : उन्हें सन्देह था, पर मैंने कह दिया, जिगर का ताप था। विगड़ गया।

माँ : वच्चों को पूछते होंगे !

पिता : हाँ पूछते थे। मैंने कह दिया कि वच्चा है, पर माँ की मृत्यु के वाद उसकी हालत ठीक नहीं रहती, परमात्मा ही मालिक है।

माँ : तो आप 'हाँ' कर दें।

पिता : हाँ, मैं सगुन ले लूँगा।

[चले जाते हैं। हुक्के की आवाज दूर होते-होते गुम हो जाती है। माँ खुशी-खुशी कमरे में घूमती है, भाषी आता है और तेज़ी से निकल जाता है।]

माँ : भाषी !

भाषी : मैं डॉक्टर के यहाँ जा रहा हूँ।

[तेज़ी से चला जाता है। बीमार के कमरे से सुरेन्द्र निकलता है।]

सुरेन्द्र : (भरी हुई आवाज़ में) माँजी........

माँ : (घवराये स्वर में) क्या वात है ? क्या वात है ?

सुरेन्द्र : दाने लाओ और दीये का प्रवन्ध करो।

माँ : क्या ?

[आँखें फाड़े उसकी ओर देखती रह जाती है। हवा की सायँ-सायँ।]

सुरेन्द्र : अरुण इस संसार से जा रहा है।

[फ़ानूस टूटकर धरती पर गिर पड़ता है। माँ भागकर दरवाजे पर जाती है।]

माँ : रौशी, रौशी !

[दरवाज़ा अन्दर से बन्द है ।]

माँ : रौशी, रौशी !

रौशन : (कमरे के अन्दर से भर्राये हुए स्वर में) क्या बात है ?

माँ : दरवाज़ा खोलो ?

रौशन : तुम लक्ष्मी का स्वागत कर आओ ।

माँ : रौशी—

रौशन : (चुप !)

माँ : रौशी !

[सीढ़ियों से रौशन के पिता के हुक्का पीने और खखारने की आवाज़ आती है ।]

पिता : (सीढ़ियों से ही) रौशन की माँ, बधाई हो !

(पिता का प्रवेश । माँ उनकी ओर मुड़ती है ।)

पिता : बधाई हो, मैंने सगुन ले लिया है ।

[कमरे का दरवाज़ा खुलता है, मृत बालक का शव लिये रौशन आता है ।]

रौशन : हाँ, नाचो, गाओ, खुशियाँ मनाओ ।

पिता : हैं ? मर गया !!

(हाथ से हुक्का गिर पड़ता है और मुँह खुला रह जाता है ।)

माँ : मेरा लाल !

(चीख़ मारकर सिर थामे धम से बैठ जाती है ।)

सुरेन्द्र : माँजी, जाकर दाने लाओ और दीये का प्रवन्ध करो ।

[पर्दा गिरता है ।]

●

रीढ़ की हड्डी



जगदीशचन्द्र माथुर

[१९१७ ई०]

पात्र

उमा	: लड़की
रामस्वरूप	: लड़की का पिता
प्रेमा	: लड़की की माँ
शंकर	: लड़का
गोपालप्रसाद	: लड़के का बाप
रतन	: रामस्वरूप का नौकर

[मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा । अन्दर के दरवाज़े से आते हुए जिन महाशय की पीठ नज़र आ रही है, वह अधेड़ उम्र के मालूम होते हैं । एक तख्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे में आते हैं । तख्त का दूसरा सिर उनके नौकर ने पकड़ रखा है ।]

बाबू : अबे धीर-धीरे चल ।····अब तख्त को उधर मोड़ दे···उधर ।···· ····बस, बस ।

[तख्त के रखे जाने की आवाज आती है ।]

नौकर : बिछा दूँ साहब ?

बाबू : [ज़रा तेज आवाज़ में] और क्या करेगा ? परमात्मा के यहाँ अक़्ल बँट रही थी तो तू देर से पहुँचा था क्या ?···बिछा दूँ सा'ब ?····और यह पसीना किस लिए बहाया है ?

नौकर : [तख्त बिछाता है] ही-ही-ही ।

बाबू : हँसता क्यों है ?····अबे, हमने भी जवानी में कसरतें की हैं । कलसों से नहाता था लोटों की तरह । यह तख्त क्या चीज़ है ? ····उसे सीधा कर·········यों हाँ, बस ।····और सुन, बहूजी से दरी माँग ला, इसके ऊपर बिछाने के लिए ।···चद्दर भी, कल जो धोबी के यहाँ से आयी है, वही ।

[नौकर जाता है । बाबूसाहब इस बीच में मेज़पोश ठीक करते हैं । एक झाड़न से गुलदस्ते को साफ़ करते हैं । कुर्सियों पर भी दो-चार हाथ लगाते हैं । सहसा घर की मालकिन प्रेमा का आना । गन्दुमी रंग, छोटा कद । चेहरे और आवाज़ से ज़ाहिर होता है कि किसी काम में बहुत व्यस्त हैं । उनके पीछे-पीछे भींगी बिल्ली की तरह नौकर आ रहा है—खाली हाथ । बाबूसाहब रामस्वरूप दोनों की तरफ देखने लगते हैं ।]

प्रमा : मैं कहती हूँ, तुम्हें इस वक्त धोती की क्या जरूरत पड़ गयी ? एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी में····

रामस्वरूप : धोती ?

प्रेमा : हाँ, अभी तो बदलकर आये हो और फिर न जाने किस लिए····

रामस्वरूप : लेकिन तुमसे धोती माँगी किसने ?

प्रेमा : यही तो कह रहा था रतन ।

रामस्वरूप : क्यों बे रतन, तेरे कानों में डाट लगी है ? मैंने कहा था—धोबी के यहाँ से जो चद्दर आयी है, उसे माँग ला·······अब तेरे लिए दिमाग कहाँ से लाऊँ ? उल्लू कहीं का !

प्रमा : अच्छा, जा, पूजावाली कोठरी में लकड़ी के बक्स के ऊपर धुले हुए कपड़े रखे हैं न ? उन्हीं में से एक चद्दर उठा ला ।

रतन : और दरी ?

प्रेमा : दरी यहीं तो रखी है, कोने में । वह पड़ी तो है ।

रामस्वरूप : [दरी उठाते हुए] और बीबीजी के कमरे में से हारमोनियम उठा ला और सितार भी ।····जल्दी जा ।

[रतन जाता है । पति-पत्नी तख्त पर दरी बिछाते हैं ।]

प्रेमा : लेकिन वह तुम्हारी लाड़ली बेटी तो मुँह फुलाये पड़ी है ।

रामस्वरूप : मुँह फुलाये ?····और तुम उसकी माँ किस मर्ज़ की दवा हो ? जैसे-तैसे करके तो वे लोग पकड़ में आये हैं । अब तुम्हारी बेवक़ूफ़ी से सारी मेहनत बेकार जाय तो मुझे दोष मत देना ।

प्रेमा : तो मैं ही क्या करूँ ? सारे जतन करके तो हार गयी । तुम्हीं ने उसे पढ़ा-लिखाकर इतना सिर चढ़ा रक्खा है । मेरी समझ में तो पढ़ाई-लिखाई के जंजाल आते नहीं । अपना ज़माना अच्छा था । 'आ, ई', पढ़ ली, गिनती सीख ली और बहुत हुआ तो 'स्त्री-सुबोधिनी' पढ़ ली । सच पूछो तो 'स्त्री-सुबोधिनी' में ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं—ऐसी बातें कि क्या तुम्हारी बी० ए०, एम० ए० की पढ़ाई में होगी । और आजकल के तो लच्छन ही अनोखे हैं···

रामस्वरूप : ग्रामोफोन बाजा होता है न ?

प्रेमा : क्यों ?

रामस्वरूप : दो तरह का होता है। एक तो आदमी का बनाया हुआ। उसे एक बार बजाकर जब चाहे रोक लो और दूसरा परमात्मा का बनाया हुआ। उसका रिकार्ड एक बार चढ़ा तो रुकने का नाम नहीं।

प्रेमा : हटो भी। तुम्हें ठिठोली ही सूझती रहती है। यह तो होता नहीं कि उस अपनी उमा को राह पर लाते। अब देर ही कितनी रही है उन लोगों के आने में।

रामस्वरूप : तो हुआ क्या ?

प्रेमा : तुम्हीं ने तो कहा था कि जरा ठीक-ठाक करके नीचे लाना। आजकल तो लड़की कितनी ही सुन्दर हो, बिना टीमटाम के भला कौन पूछता है ? इसी मारे मैंने पौडर-वौडर उसके सामने रक्खा था। पर उसे तो इन चीज़ों से न जाने किस जनम की नफ़रत है। मेरा कहना था कि आँचल में मुँह लपेट लेट गयी। भई, मैं तो बाज़ आयी तुम्हारी इस लड़की से।

रामस्वरूप : न जाने कैसा इसका दिमाग़ है वरना आजकल की लड़कियों के सहारे तो पौडर का कारबार चलता है।

प्रेमा : अरे मैंने तो पहले ही कहा था इंट्रेंस ही पास करा लेते—लड़की अपने हाथ रहती और इतनी परेशानी उठानी न पड़ती। पर तुम तो····

रामस्वरूप : [बात काटकर] चुप, चुप !····[दरवाजे में झाँकते हुए] तुम्हें कतई अपनी जबान पर काबू नहीं है। कल ही यह बता दिया था कि उन लोगों के सामने जिक्र और ढंग से होगा। मगर तुम तो अभी से सब कुछ उगले देती हो। उनके आने तक तो न जाने क्या हाल करोगी !

प्रेमा : अच्छा बाबा, मैं न बोलूँगी। जैसी तुम्हारी मर्जी हो, करना। बस, मुझे तो मेरा काम बता दो।

रामस्वरूप : अच्छा तो उमा को जैसे हो तैयार कर लो। न सही पौडर। वैसे कौन बुरी है। पान लेकर भेज देना उसे। और, नाश्ता तो तैयार है न ? [रतन का आना] आ गया रतन ?....इधर ला, इधर। बाजा नीचे रख दे। चद्दर खोल।....पकड़ तो ज़रा उधर से।

[चद्दर बिछाते हैं]

प्रेमा : नाश्ता तो तैयार है। मिठाई तो वे लोग ज्यादा खायँगे नहीं। कुछ नमकीन चीज़ें बना दी हैं। फल रक्खे हैं ही। चाय तैयार है और टोस्ट भी। मगर हाँ, मक्खन ? मक्खन तो आया ही नहीं।

रामस्वरूप : क्या कहा ? मक्खन नहीं आया ? तुम्हें भी किस वक्त याद आती है। जानती हो कि मक्खनवाले की दूकान दूर है, पर तुम्हें तो ठीक वक्त पर बात सूझती ही नहीं। अब बताओ, रतन मक्खन लाये कि यहाँ का काम करे। दफ़्तर के चपरासी से कहा था आने के लिए सो नखरों के मारे—

प्रेमा : यहाँ का काम कौन ज्यादा है ? कमरा तो ठीक-ठीक है ही। बाजा-सितार आ ही गया। नाश्ता यहाँ बराबरवाले कमरे में 'ट्रे' में रक्खा हुआ है, सो तुम्हें पकड़ा दूँगी। एकाध चीज़ खुद ले आना। इतनी देर में रतन मक्खन ले ही आयेगा।....दो आदमी ही तो हैं ?

रामस्वरूप : हाँ; एक तो बाबू गोपालप्रसाद और दूसरा खुद लड़का है। देखो; उमा से कह देना कि ज़रा करीने से आये। ये लोग ज़रा ऐसे ही हैं। गुस्सा तो मुझे बहुत आता है इनके दकियानूसी खयालों पर। खुद पढ़े-लिखे हैं, वकील हैं, सभा-सोसाइटियों में जाते हैं; मगर लड़की चाहते हैं ऐसी कि ज्यादा पढ़ी-लिखी न हो।

प्रेमा : और लड़का ?

रामस्वरूप : बताया तो था तुम्हें। बाप सेर है तो लड़का सवा सेर। बी० एस-सी० के बाद लखनऊ में ही तो पढ़ता है मेडिकल कॉलेज में। कहते हैं कि शादी का सवाल दूसरा है; तालीम का दूसरा।

क्या करूँ, मजबूरी है। मतलब अपना है, वरना इन लड़कों और इनके बापों को ऐसी कोरी-कोरी सुनाता कि ये भी....

रतन : [जो अब तक दरवाजे के पास चुपचाप खड़ा हुआ था। जल्दी-जल्दी] बाबूजी, बाबूजी !

रामस्वरूप : क्या है ?

रतन : कोई आते हैं।

रामस्वरूप : [दरवाजे से बाहर झाँककर जल्दी मुँह अन्दर करते हुए] अरे; ये प्रेमा, वे आ भी गये। (नौकर पर नजर पड़ते ही) और तू यहीं खड़ा है, बेवकूफ़ ! गया नहीं मक्खन लाने ?....सब चौपट कर दिया !....अबे, उधर से नहीं, अन्दर के दरवाजे से जा। (नौकर अन्दर जाता है)....और तुम जल्दी करो प्रेमा। उमा को समझा देना थोड़ा-सा गा देगी।

[प्रेमा जल्दी से अन्दर की तरफ आती है। उसकी धोती जमीन पर रखे बाजे से अटक जाती है।]

प्रेमा : उँह ! यह बाजा वह नीचे ही रख गया है, कम्बख्त !

रामस्वरूप : तुम जाओ मैं रख लेता हूँ।....जल्दी।

[प्रेमा जाती है। बाबू रामस्वरूप बाजा उठाकर रखते हैं। किवाड़ों पर दस्तक।]

रामस्वरूप : हँ हँ हँ। आइये, आइये !....हँ हँ हँ।

[बाबू गोपाल प्रसाद और उनके लड़के शंकर का आना। आँखों से लोक-चतुराई टपकती है। आवाज़ से मालूम होता है कि काफ़ी अनुभवी और फ़ितरती महाशय हैं। उनका लड़का कुछ खीस निपोरनेवाले नौजवानों में से है। आवाज पतली है और खिसियाहट-भरी। झुकी कमर इनकी खासियत है।]

रामस्वरूप : [अपने दोनों हाथ मलते हुए] हँ हँ, इधर तशरीफ लाइये, इधर...।

[बाबू गोपालप्रसाद बैठते हैं मगर, बेंत गिर पड़ता है।]

रामस्वरूप : यह बेंत !....लाइये मुझे दीजिये। [कोने में रख देते हैं। सब बैठते हैं।] हँ-हँ ! मकान ढूँढ़ने में कुछ तकलीफ़ तो नहीं हुई ?

गो० प्रसाद : [खखारकर] नहीं । ताँगेवाला जानता था।···और फिर हमें तो यहाँ आना था । रास्ता मिलता कैसे नहीं ?

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ ! यह तो आपकी बड़ी मेहरबानी है । मैंने आपको तकलीफ तो दी—

गो० प्रसाद : अरे नहीं साहब ! जैसा मेरा काम वैसा आपका काम । आखिर लड़के की शादी तो करनी ही है । बल्कि यों कहिये कि मैंने आपके लिए खासी परेशानी कर दी ।

रामस्वरूप : हँ-हँ-हँ ! यह लीजिये; आप तो मुझे काँटों में घसीटने लगे । हम तो आपके—हँ-हँ ! [थोड़ी देर बाद लड़के की तरफ़ मुखातिब होकर] और कहिये, शंकरबाबू, कितने दिनों की और छुट्टियाँ हैं ?

शंकर : जी, कॉलेज की तो छुट्टियाँ नहीं हैं । 'वीक एण्ड' में चला आया था ।

रामस्वरूप : तो आपका कोर्स खत्म होने में तो अब साल-भर रहा होगा ?

शंकर : जी, यही कोई साल-दो साल ।

रामस्वरूप : साल दो साल ?

शंकर : हँ-हँ-हँ !···जी एकाध साल का 'मार्जिन' रखता हूँ ।

गो० प्रसाद : बात यह है साहब कि शंकर एक साल बीमार हो गया था । क्या बतायें, इन लोगों को इसी उम्र में सारी बीमारियाँ सताती हैं । एक हमारा ज़माना था कि स्कूल से आकर दर्जनों कचौड़ियाँ उड़ा जाते थे, मगर फिर जो खाना खाने बैठते तो वैसी-की-वैसी ही भूख !

रामस्वरूप : कचौड़ियाँ भी तो उस जमाने में पैसे की दो आती थीं ।

गो० प्रसाद : जनाब यह हाल था कि चार पैसे में ढेर-सी मलाई आती थी और अकेले दो आने की हजम करने की ताकत थी, अकेले ! और अब तो बहुतेरे खेल वगैरह होते हैं स्कूलों में । तब न कोई वॉलीबॉल जानता था, न टेनिस, न बैडमिण्टन । बस कभी हॉकी या कभी क्रिकेट कुछ लोग खेला करते थे । मगर मज़ाल कि कोई कह जाय कि यह लड़का कमजोर है ।

[शंकर और रामस्वरूप खीस निपोरते हैं।]

रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ ! उस जमाने की बात ही दूसरी थी। हें-हें !

गो० प्रसाद : [जोशीली आवाज में] और पढ़ाई का यह हाल था कि एक बार कुर्सी पर बैठे कि बारह घण्टे की 'सीटिंग' हो गयी, बारह घण्टे ! जनाब, मैं सच कहता हूँ कि उस जमाने का मैट्रिक भी वह अंग्रेजी लिखता था फर्राटे की कि आजकल के एम० ए० भी मुकाबिला नहीं कर सकते।

रामस्वरूप : जी हाँ, जी हाँ। यह तो है ही।

गो० प्रसाद : माफ कीजियेगा बाबू रामस्वरूप, उस ज़माने की बात याद आती है तो अपने को जब्त करना मुश्किल हो जाता है।

रामस्वरूप : हें-हें-हें !....जी हाँ, वह तो रंगीन जमाना था, रंगीन जमाना ! हें-हें-हें !

(शंकर भी हीं-हीं करता है।)

गो० प्रसाद : [एक साथ अपनी आवाज और तरीका बदलते हुए] अच्छा तो साहब, फिर 'बिजनेस' की बातचीत हो जाय।

रामस्वरूप : [चौंककर] बिजनेस—बिजी....[समझकर] आह !....अच्छा। लेकिन जरा नाश्ता तो कर लीजिये !

[उठते हैं।]

गो० प्रसाद : यह सब आप क्या तकल्लुफ़ करते हैं !

रामस्वरूप : हें-हें-हें ! तकल्लुफ़ किस बात का ? हें-हें ! यह तो मेरी बड़ी तक़दीर है कि आप मेरे यहाँ तशरीफ लाये। वरना मैं किस क़ाबिल हूँ। हें-हें।....माफ कीजियेगा जरा। अभी हाजिर हुआ।

[अन्दर जाते हैं।]

गो० प्रसाद : [थोड़ी देर बाद दबी आवाज़ में] आदमी तो भला है ! मकान-वकान से हैसियत भी बुरी नहीं मालूम होती। पता चले, लड़की कैसी है।

शंकर : जी....

[कुछ खखारकर इधर-उधर देखता है ।]

गो० प्रसाद : क्यों, क्या हुआ ?

शंकर : कुछ नहीं ।

गो० प्रसाद : झुककर क्यों बैठते हो ? ब्याह तय करने आये हो, कमर सीधी करके बैठो । तुम्हारे दोस्त ठीक कहते हैं कि शंकर की 'बैकबोन'— [पर इतने में बाबू रामस्वरूप आते हैं, हाथ में चाय का 'ट्रे' लिये हुए । मेज पर रख देते हैं ।]

गो० प्रसाद : आखिर आप माने नहीं !

रामस्वरूप : (चाय प्याले में ढालते हुए) हें-हें-हें ! आपको विलायती चाय पसन्द है या हिन्दुस्तानी ?

गो० प्रसाद : नहीं-नहीं साहब, मुझे आधा दूध और आधी चाय दीजिये । और जरा चीनी भी ज्यादा डालियेगा । मुझे तो भई यह नया फैशन पसन्द नहीं । एक तो वैसे ही चाय में पानी काफी होता है, और फिर चीनी नाम के लिए डाली जाय तो जायका क्या रहेगा ?

रामस्वरूप : हें-हें, कहते तो आप सही हैं ।

[प्याला पकड़ाते हैं ।]

शंकर : [खखारकर] सुना है, सरकार अब ज्यादा चीनी लेनेवालों पर 'टैक्स' लगायेगी ।

गो० प्रसाद : (चाय पीते हुए) हूँ ! सरकार जो चाहे सो कर ले,पर अगर आमदनी करनी है तो सरकार को बस एक ही टैक्स लगाना चाहिए ।

रामस्वरूप : [शंकर को प्याला पकड़ाते हुए] वह क्या ?

गो० प्रसाद : खूबसूरती पर टैक्स ! (रामस्वरूप और शंकर हँस पड़ते हैं ।) मज़ाक नहीं साहब, यह ऐसा टैक्स है जनाब कि देनेवाले चूँ भी न करेंगे । बस, शर्त यह है कि हर एक औरत पर यह छोड़ दिया जाय कि वह अपनी खूबसूरती के 'स्टैण्डर्ड' के माफिक अपने ऊपर टैक्स तय कर ले । फिर देखिये,सरकार की कैसी आमदनी बढ़ती है ।

रामस्वरूप : (जोर से हँसते हुए) वाह-वाह ! खूब सोचा आपने ! वाकई आजकल यह खूबसूरती का सवाल भी बेढब हो गया है । हम लोगों के ज़माने में तो यह कभी उठता भी न था । (तश्तरी गोपालप्रसाद की तरफ बढ़ाते हैं ।) लीजिये ।

गो० प्रसाद : (समोसा उठाते हुए) कभी नहीं साहब, कभी नहीं ।

रामस्वरूप : (शंकर की तरफ मुखातिब होकर) आपका क्या ख्याल है शंकरबाबू ?

शंकर : किस मामले में ?

रामस्वरूप : यही कि शादी तय करने में खूबसूरती का हिस्सा कितना होना चाहिए ?

गो० प्रसाद : (बीच में ही) यह बात दूसरी है बाबूरामस्वरूप, मैंने आपसे पहले भी कहा था, लड़की का खूबसूरत होना निहायत जरूरी है । कैसे भी हो, चाहे पाउडर वगैरह लगाये, चाहे वैसे ही । बात यह है कि हम आप मान भी जायँ, मगर घर की औरतें तो राज़ी नहीं होतीं । आपकी लड़की तो ठीक है !

रामस्वरूप : जी हाँ, वह तो आप देख लीजियेगा ।

गो० प्रसाद : देखना क्या ! जब आपसे इतनी बातचीत हो चुकी है, तब तो यह रस्म ही समझिये ।

रामस्वरूप : हें-हें, यह तो आपका मेरे ऊपर भारी अहसान है । हें-हें !

गो० प्रसाद : और ज़ायचा (जन्म-पत्र) तो मिल ही गया होगा ।

रामस्वरूप : जी, जायचे का मिलना क्या मुश्किल बात है । ठाकुरजी के चरणों में रख दिया । बस खुद-ब-खुद मिला हुआ समझिये ।

गो० प्रसाद : यह ठीक कहा आपने, बिल्कुल ठीक । (थोड़ी देर रुककर) लेकिन हाँ, यह जो मेरे कानों में भनक पड़ी है, यह तो ग़लत है न ?

रामस्वरूप : (चौंककर) क्या ?

गो० प्रसाद : यही पढ़ाई-लिखाई के बारे में !.....जी हाँ, साफ बात है साहब, हमें ज्यादा पढ़ी-लिखी लड़की नहीं चाहिए । मेमसाहब तो रखनी

नहीं, कौन भुगतेगा उनके नखरों को। बस, हद-से-हद मैट्रिक पास होनी चाहिए.........क्यों शंकर ?

शंकर : जी हाँ, कोई नौकरी तो करानी नहीं है।

रामस्वरूप : नौकरी का कोई सवाल ही नहीं उठता।

गो० प्रसाद : और क्या साहब ! देखिये, कुछ लोग मुझसे कहते हैं कि जब आपने अपने लड़के को बी० ए०, एम० ए० तक पढ़ाया है तब उनकी बहुएँ भी ग्रेजुएट लीजिये। भला पूछिये इन अक्ल के ठेकेदारों से कि क्या लड़कों की पढ़ाई और लड़कियों की पढ़ाई एक बात है। अरे मर्दों का काम तो है ही पढ़ना और काबिल होना। अगर औरतें भी वही करने लगीं, अंग्रेजी अखबार पढ़ने लगीं और 'पॉलिटिक्स' वगैरह पर बहस करने लगीं तब तो हो चुकी गृहस्थी। जनाब मोर के पंख होते हैं, मोरनी के नहीं; शेर के बाल होते हैं, शेरनी के नहीं।

रामस्वरूप : जी हाँ, और मर्द के दाढ़ी होती है औरत के नहीं...हैं हैं हैं !
[शंकर भी हँसता है, मगर गोपालप्रसाद गम्भीर हो जाते हैं।]

गो० प्रसाद : हाँ, हाँ। वह भी सही है। कहने का मतलब यह है कि कुछ बातें दुनिया में ऐसी हैं जो सिर्फ मर्दों के लिए हैं और ऊँची तालीम भी ऐसी ही चीजों में से एक है।

रामस्वरूप : [शंकर से] चाय और लीजिये।

शंकर : धन्यवाद। पी चुका।

रामस्वरूप : [गोपालप्रसाद से] आप ?

गो० प्रसाद : बस साहब, अब तो खत्म ही कीजिये।

रामस्वरूप : आपने कुछ खाया ही नहीं। चाय के साथ 'टोस्ट' नहीं थे। क्या बतायें वह मक्खन—

गो० प्रसाद : नाश्ता ही तो करना था साहब, कोई पेट तो भरना था नहीं। और फिर टोस्ट-वोस्ट मैं खाता भी नहीं।

रामस्वरूप : हँ हँ ! [मेज़ को एक तरफ सरका देते हैं । फिर अन्दर के दरवाजे की तरफ मुँह कर ज़रा जोर से] अरे ज़रा पान भिजवा देना.... सिगरेट मँगवाऊँ ?

गो० प्रसाद : जी नहीं ?

[पान की तश्तरी हाथों में लिये उमा आती है । सादगी के कपड़े, गर्दन झुकी हुई । बाबू गोपालप्रसाद आँखें गड़ाकर और शंकर आँखें छिपाकर उसे ताक रहे हैं ।]

रामस्वरूप : हँ हँ ?....यही, हँ हँ आपकी लड़की है । लाओ बेटी पान मुझे दो ।

[उमा पान की तश्तरी अपने पिता को देती है । उस समय उसका चेहरा ऊपर उठ जाता है और नाक पर रखा हुआ सोने की रिमवाला चश्मा दीखता है । बाप-बेटे चौंक उठते हैं ।]

गो० प्रसाद और शंकर : [एक साथ] चश्मा !!

रामस्वरूप : (ज़रा सकपकाकर) जी, वह तो....वह....पिछले महीने में इसकी आँखें दुखनी आ गयी थीं, सो कुछ दिनों के लिए चश्मा लगाना पड़ रहा है ।

गो० प्रसाद : पढ़ाई-वढ़ाई की वजह से तो नहीं है कुछ ?

रामस्वरूप : नहीं साहब, वह तो मैंने अर्ज़ किया न ।

गो० प्रसाद : हूँ । [संतुष्ट होकर कुछ कोमल स्वर में] बैठो बेटी ।

रामस्वरूप : वहाँ बैठ जाओ उमा, उस तख्त पर, अपने बाजे के पास !

(उमा बैठाती है ।)

गो० प्रसाद : चाल में तो कोई खराबी है नहीं । चेहरे पर भी छवि है ।....हाँ कुछ गाना-बजाना सीखा है ?

रामस्वरूप : जी हाँ, सितार भी, और बाजे भी । सुनाओ तो उमा एकाध गीत सितार के साथ ।

[उमा सितार उठाती है । थोड़ी देर बाद मीरा का मशहूर गीत 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई' गाना शुरू कर देती

है। स्वर से जाहिर है कि गाने का अच्छा ज्ञान है। उसके स्वर में तल्लीनता आ जाती है, यहाँ तक कि उसका मस्तक उठ जाता है। उसकी आँखें शंकर की झेंपती-सी आँखों से मिल जाती हैं और वह गीत गाते-गाते एक साथ रुक जाती है।]

रामस्वरूप : क्यों, क्या हुआ ? गाने को पूरा करो उमा ?

गो० प्रसाद : नहीं-नहीं साहब, काफी है। लड़की आपकी अच्छा गाती है।

[उमा सितार रखकर अन्दर जाने को बढ़ती है।]

गो० प्रसाद : अभी ठहरो, बेटी !

रामस्वरूप : थोड़ा और बैठी रहो उमा !

[उमा बैठती है।]

गो० प्रसाद : [उमा से] तो तुमने पेंटिंग-वेंटिंग भी सीखी है ?

[उमा चुप]

रामस्वरूप : हाँ, वह तो मैं आपको बताना भूल ही गया। वह जो तसवीर टँगी हुई है, कुत्तेवाली, इसी ने खींची है। और वह दीवार पर भी।

गो० प्रसाद : हूँ। यह तो बहुत अच्छा है। और सिलाई वगैरह ?

रामस्वरूप : सिलाई तो सारे घर की इसी के जिम्मे रहती है, यहाँ तक कि मेरी कमीजें भी। हें-हें-हें।

गो० प्रसाद : ठीक। लेकिन, हाँ बेटी, तुमने कुछ इनाम-विनाम भी जीते हैं ?

[उमा चुप। रामस्वरूप इशारे के लिए खाँसते हैं, लेकिन उमा चुप है, उसी तरह गर्दन झुकाये। गोपालप्रसाद अधीर हो उठते हैं और रामस्वरूप सकपकाते हैं।]

रामस्वरूप : जवाब दो, उमा। [गोपाल से] हें-हें, जरा शरमाती है। इनाम तो इसने—

गो० प्रसाद : [जरा रूखी आवाज़ में] जरा भी तो मुँह खोलना चाहिए।

रामस्वरूप : उमा देखो, आप क्या कह रहे हैं। जवाब दो न।

उमा : [हल्की लेकिन मजबूत आवाज में] क्या जवाब दूँ बाबूजी ! जब कुर्सी-मेज़ बिकती है, तब दूकानदार कुर्सी-मेज़ से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ खरीददार को दिखला देता है। पसन्द आ गयी तो अच्छा है वरना—

रामस्वरूप : [चौंककर खड़े हो जाते हैं] उमा, उमा !

उमा : अब मुझे कह लेने दीजिए बाबूजी।····ये जो महाशय मेरे खरीद-दार बनकर आये हैं, इनसे जरा पूछिए कि क्या लड़कियों के दिल नहीं होता है ? क्या उनके चोट नहीं लगती ? क्या वे बेबस भेड़-बकरियाँ हैं जिन्हें कसाई अच्छी तरह देख-भालकर खरीदते हैं ?

गो० प्रसाद : [ताव में आकर] बाबू रामस्वरूप, आपने मेरी इज्जत उतारने के लिए मुझे यहाँ बुलाया था ?

उमा : [तेज आवाज में] जी हाँ, और हमारी बेइज्जती नहीं होती जो आप इतनी देर से नाप-तौल कर रहे हैं ? और जरा अपने इन साहबजादे से पूछिये कि अभी पिछली फरवरी में वे लड़कियों के होस्टल के इर्द-गिर्द क्यों घूम रहे थे, और वहाँ से कैसे भगाये गये थे।

शंकर : बाबूजी, चलिए।

गो० प्रसाद : लड़कियों के होस्टल में ?····क्या तुम कॉलेज में पढ़ी हो ?

[रामस्वरूप चुप]

उमा : जी हाँ, मैं कॉलेज में पढ़ी हूँ। मैंने बी० ए० पास किया है। कोई पाप नहीं किया, कोई चोरी नहीं की और न आपके पुत्र की तरह ताक-झाँककर कायरता दिखायी है। मुझे अपनी इज्जत, अपने मान का खयाल तो है। लेकिन इनसे पूछिए कि ये किस तरह नौकरानी के पैरों पड़कर अपना मुँह छिपाकर भागे थे।

रामस्वरूप : उमा, उमा !!

गो० प्रसाद : [खड़े होकर गुस्से में] बस हो चुका। बाबू रामस्वरूप आपने मेरे साथ दगा किया। आपकी लड़की बी० ए० पास है और

आपने मुझसे कहा था कि सिर्फ मैट्रिक तक पढ़ी है। लाइये, मेरी छड़ी कहाँ है ? मैं चलता हूँ ! [छड़ी ढूँढ़कर उठाते हैं] बी० ए० पास ! उफ् ओह ! गजब हो जाता ! झूठ का भी कुछ ठिकाना है। आओ बेटे चलें।

[दरवाजे की ओर बढ़ते हैं]

उमा : जी हाँ, जाइये, जरूर चले जाइये। लेकिन घर जाकर जरा यह पता लगाइयेगा कि आपके लाड़ले बेटे के रीढ़ की हड्डी भी है या नहीं—याने 'बैकबोन'—

[बाबू गोपालप्रसाद के चेहरे पर बेबसी का गुस्सा है और उनके लड़के के रुआसापन। दोनों बाहर चले जाते हैं। बाबू रामस्वरूप कुर्सी पर धम् से बैठ जाते हैं। उमा सहसा चुप हो जाती है। लेकिन उसकी हँसी सिसकियों में तबदील हो जाती है। प्रेमा का घबराहट की हालत में आना।]

प्रेमा : उमा, उमा !………रो रही है ?

[यह सुनकर रामस्वरूप खड़े होते हैं। रतन आता है।]

रतन : बाबूजी, मक्खन !

[सब रतन की तरफ देखते हैं और पर्दा गिरता है।]

●

सीमा रेखा



विष्णु प्रभाकर
[१९१२ ई०]

पात्र



पुरुष

लक्ष्मीचन्द्र

शरत्चन्द्र

सुभाषचन्द्र

कैप्टन विजय



स्त्री

तारा

अन्नपूर्णा

सविता

उमा

[दूसरे भाई, उपमंत्री शरत्चन्द्र का ड्राइंग-रूम, आयु ५२ वर्ष। आधुनिक, पर सादगी की छाप। दीवार पर गांधीजी का तैल-चित्र है। दो-चार चित्र तिपाइयों पर भी हैं। पुस्तकें काफ़ी हैं। बीचो-बीच एक सोफ़ा-सेट है। उत्तर की ओर सामने दो द्वार हैं जो बाहर बरामदे में खुलते हैं। उसके पार सड़क है। पूर्व और पश्चिम के द्वार घर के अन्दर जाते हैं। सोफ़े व मेज़ों के आसपास कुर्सियाँ हैं। पर्दा उठने पर मंच खाली है। दो क्षण बाद शरत्चन्द्र तेज़ी से आते हैं। बेहद परेशान हैं। कई क्षण बेचैनी से घूमते हैं, फिर टेलीफोन उठा लेते हैं। नम्बर मिलाते हैं।]

शरत् : हलो, मैं शरत् बोल रहा हूँ। विजय का कुछ पता लगा....क्या? क्या अभी तक नहीं लौटे? झगड़ा बढ़ गया है। क्या? गोली.... गोली चलानी पड़ी। भीड़ बैंक के पास बेकाबू हो गयी थी। बैंक को लूटा? नहीं...कहीं और लूटमार हुई? नहीं....कोई घायल? अभी कुछ पता नहीं? ओह, देखो, अभी पता करके बताओ। विजय आये तो मुझे टेलीफोन करने को कहो....तुरन्त ....समझे....मैं घर पर ही हूँ।

[दूसरा नम्बर मिलाना चाहते हैं कि उनकी पत्नी अन्नपूर्णा घबरायी हुई बाहर से आती है।]

अन्नपूर्णा : आपने कुछ सुना है?

शरत् : हाँ, सुना है गोली चल गयी!

अन्नपूर्णा : अपने राज में भी गोली चलती है?

शरत् : अपना राज समझता कौन है? जब तक अपना राज नहीं समझेंगे, तब तक गोली चलेगी ही! लेकिन खैर, तुम कहाँ गयी थीं?

अन्नपूर्णा : जीजी के पास! रास्ते में सुना रामगंज में गोली चल गयी।

बाजार बन्द हो रहे हैं। भय छाया हुआ है। लोग सरकार को गालियाँ दे रहे हैं।

शरत् : (चोंगा रखकर आगे आ जाते हैं।) सरकार को गाली ही दी जाती है। गोली चली तो गाली देते हैं। बैंक लुट जाता, तब भी गाली ही देते।

अन्नपूर्णा : (एकदम) बैंक ! कौन-सा बैंक लुट रहा था ? बैंक से तो कुछ झगड़ा नहीं था। कल आपके पीछे कुछ विद्यार्थी बसवालों से झगड़ पड़े थे और आप जानते हैं कि विद्यार्थी····

शरत् : (एकदम) कि विद्यार्थी कानून की चिन्ता नहीं करते। बच्चे हैं, अल्हड़ हैं। [तेज़ होकर] यह भी कोई बात है ? लोग पागल हो जाते हैं। कानून अपने हाथ में ले लेते हैं। गोली चली है तो जरूर कोई कारण रहा होगा। कुछ लोगों ने बैंक पर धावा बोला होगा। पुलिस पर पत्थर फेंके होंगे।

[सविता का प्रवेश—चौथे भाई, जन-नेता सुभाषचन्द्र की पत्नी, आयु पैंतीस वर्ष]

सविता : फेंके होंगे तो इसका यह अर्थ नहीं कि पत्थर के जवाब में गोली चला दी जाय। गोली उन्हें आत्मरक्षा के लिए नहीं दी जाती; जनता की रक्षा के लिए दी जाती है।

अन्नपूर्णा : सविता तुम कहाँ से आ रही हो ?

(लक्ष्मीचन्द्र का प्रवेश—व्यापारी, सबसे बड़े भाई, आयु ५६ वर्ष)

शरत् : तुम क्या कह रही हो ?

सविता : मैं ठीक कह रही हूँ····

लक्ष्मी : तुम बिलकुल गलत कह रही हो। पुलिस गोली न चलाती तो बैंक लुट जाता, बाजार लुट जाता, चारों ओर लूट-मार मच जाती। शासन की जड़ें हिल जातीं।

सविता : शासन की जड़ें हिलतीं या न हिलतीं दादाजी, पर आपकी जड़ें जरूर हिल जातीं। आपका व्यापार ठप हो जाता। आपका नुकसान होता····

लक्ष्मी : हाँ, मेरा नुकसान होता। मैं सरकार की प्रजा हूँ। प्रजा की रक्षा करना सरकार का फर्ज है····!

सविता : यानी सरकार की पुलिस आपकी रक्षा करने के लिए है।

लक्ष्मी : हाँ, मेरी रक्षा करने के लिए है।

सविता : केवल आपकी····!

अन्नपूर्णा : न, न, सविता। इनका मतलब केवल अपने से नहीं है। भीड़ इनका ही नुकसान करके न रह जाती। वह सारे शहर को बरबाद कर देती।

सविता : भीड़ में इतनी शक्ति है, जीजी ?

शरत् : भीड़ में कितनी शक्ति है, सवाल यह नहीं है।

सविता : तो क्या है ?

शरत् : सवाल यह है कि क्या भीड़ को कानून अपने हाथ में लेने का अधिकार है ? मैं समझता हूँ उसे यह अधिकार नहीं है।

सविता : और यदि वह लेती है तो····

शरत् : तो वह विद्रोह है और विद्रोह को दबाने का सरकार को पूरा-पूरा अधिकार है।

सविता : लेकिन विद्रोह क्यों किया गया है, यह देखना क्या सरकार का कर्त्तव्य नहीं है ?

[टेलीफोन की घंटी बजती है। शरत् एकदम चोंगा उठाते हैं। सब उनके पास आते हैं।]

शरत् : हलो····हाँ मैं ही हूँ····क्या स्थिति अभी काबू में नहीं है ? लूटमार तो नहीं हुई न ? अच्छा····घायल कितने हुए····पाँच वहीं मर गये। बीस घायल अस्पताल में हैं····मैं अभी आता हूँ। अभी···
(टेलीफोन का चोंगा रखकर तेजी से जाने को मुड़ते हैं।)

अन्नपूर्णा : (एकदम) नहीं, नहीं, आप ऐसे नहीं जा सकते ।

लक्ष्मी : हाँ, पहले फोन करके पुलिस बुला लो ।

सविता : पुलिस क्या करेगी ? चलिये मैं चलती हूँ ।

शरत् : आप चिन्ता न करें । पुलिस की गाड़ी बाहर खड़ी है ।

सविता : (व्यंग्य से) ज़रूर होगी ! जनता के नेता अब पुलिस की गाड़ी में ही जा सकते हैं । (आवेश में) जिन्होंने जनता का नेतृत्व किया, जनता के आगे होकर गोलियाँ खायीं, जो एक दिन जनता की आँखों के तारे थे, वे ही आज पुलिस के पहरे में जनता से मिलने जाते हैं ।

[शरत् तिलमिलाकर कुछ कहना चाहते हैं कि तभी तीसरे भाई विजय, पुलिस कप्तान, आयु ४८ वर्ष, पूरी वर्दी में प्रवेश करते हैं ।]

लक्ष्मी : (एकदम) विजय !

सविता : कप्तानसाहब, आप यहाँ !

अन्नपूर्णा : विजय; अब क्या हाल है ?

शरत् : विजय, तुमने यह क्या कर डाला ? तुमने गोली क्यों चलायी ? तुम्हें सोचना चाहिए था कि····

लक्ष्मी : विजय ने जो कुछ किया, सोच-समझकर किया है और ठीक किया है ।

अन्नपूर्णा : हाँ, बिना सोचे-समझे कोई काम कैसे किया जा सकता है । सोचा तो होगा ही पर····

शरत् : नहीं, नहीं; यह बहुत बुरा हुआ । जानते नहीं, अब जनता का राज है और जनता के राज में, जनतन्त्र में, जनता की प्रतिष्ठा होती है ।

विजय : लेकिन गुण्डों की नहीं !

सविता : वे गुण्डे हैं !

लक्ष्मी : हाँ, वे गुण्डे हैं। दंगा करनेवाले गुण्डे होते हैं। शोहदे होते हैं!

शरत् : नहीं भइया। वे सब गुण्डे नहीं होते। हाँ; गुण्डों के बहकाने में ज़रूर आ जाते हैं।

सविता : यह भी खूब रही। जनता कुछ गुण्डों के बहकाने में आ जाय और आप लोगों की, जो कल तक उनके सब कुछ थे, कोई बात न सुने!

शरत् : (तिलमिलाकर) सविता''''सविता!

सविता : सुनिये, भाईसाहब! बात यह है कि आप अपना सन्तुलन खो बैठे हैं। आप निरंकुश होते जा रहे हैं। आप अपने को केवल शासक मानने लगे हैं। आप भूल गये हैं कि जनराज में शासक कोई नहीं होता, सब सेवक होते हैं।

विजय : (थका-सा) सेवक होते हैं तो क्या केवल मर जाने के लिए हैं?

सविता : हाँ, मर जाने के लिए ही हैं। कोई मरकर देखे तो''''

लक्ष्मी : सविता, बहू! तुम बहुत आगे बढ़ रही हो। स्वतन्त्रता का युग है तो इसका यह मतलब नहीं कि बड़े-छोटे का विचार न किया जाय।

अन्नपूर्णा : हाँ, सविता! तुम्हें इतना तेज़ नहीं होना चाहिए।

सविता : मैं क्षमा चाहती हूँ। आप सब मुझसे बड़े हैं। आपका अपमान मैं कभी नहीं करती, ऐसा सोच भी नहीं सकती। पर इस नाते-रिश्ते से ऊपर भी तो हम कुछ हैं। हम स्वतन्त्र भारत की प्रजा हैं; हम एक स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं। हम इन्सान हैं!

विजय : इन्सान हैं तो सभी हैं। स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं तो सभी हैं। कानून सब पर लागू होता है।

लक्ष्मी : बेशक सब पर लागू होता है। सब समान हैं।

सविता : बेशक सब समान हैं दादाजी, पर जिन पर व्यवस्था और न्याय की ज़िम्मेदारी है, उनका दायित्व अधिक है।

शरत् : जरूर है, इसीलिए मुझे जाना है। लेकिन जाने से पहले मैं जानना चाहूँगा विजय कि आखिर बात कैसे बढ़ गयी ?

विजय : मैं तो वहाँ था नहीं। कल के झगड़े के बारे में आप जानते ही हैं। आज फिर विद्यार्थियों ने प्रदर्शन किये। डिपो पर हमला किया। वहाँ से वे बैंक के पास आ····

शरत् : क्या उन्होंने बैंक पर हमला किया ?

विजय : कर सकते थे। शायद वे यही चाहते थे।

शरत् : कौन विद्यार्थी····

विजय : यह तो नहीं कह सकता। भीड़ में केवल विद्यार्थी ही नहीं थे। शरारती लोग ऐसे अवसरों की ताक में रहते हैं। पुलिस ने भीड़ को रोका तो उन्होंने पत्थर फेंके····

अन्नपूर्णा : पुलिस पर पत्थर फेंके ?

लक्ष्मी : तब तो जरूर उनका इरादा बैंक लूटने का था।

शरत् : क्या पुलिसवालों को चोटें आयीं ?

विजय : जी हाँ; दस-बारह सिपाही घायल हो गये। एक इन्सपेक्टर का सिर फूट गया।

सविता : बस !

लक्ष्मी : तुम चाहती थीं कि वे सब मर जाते ?

(चौथे भाई सुभाषचन्द्र का प्रवेश—जन-नेता, आयु ४४ वर्ष)

सुभाष : हाँ; वे सब मर जाते तो ठीक होता।

शरत् : सुभाष !

अन्नपूर्णा : सुभाष, यह तुम क्या कह रहे हो ?

लक्ष्मी : तुम तो कम्युनिस्ट हो गये हो और अपनी बहू को भी तुमने ऐसा ही बना दिया है।

(बाहर शोर उठता है।)

सुभाष : दादाजी ! मैं न कभी कम्युनिस्ट था, न हूँ और न कभी बनूँगा; पर मैं स्वतन्त्र भारत में गोली चलाना जुर्म मानता हूँ ।

लक्ष्मी : चाहे जनता कुछ भी करे ! उसे अब अधिकार है !

सुभाष : बेशक है ! उसी ने इन लोगों के (शरत् की ओर इशारा करता है ।) हाथ में शासन की बागडोर सौंपी है ।

शरत् : किसलिए सौंपी है ? रक्षा के लिए या बरबादी के लिए ? [बाहर शोर तेज़ होता है । सविता चौंकती है । धीरे से बोलती है और बाहर जाती है । शेष लोग तेज़-तेज़ बोलते रहते हैं ।]

सविता : (अलग से) यह शोर कैसा है । देखूँ तो····(खिसक जाती है ।)

सुभाष : (शरत् की बात का उत्तर देते हुए) रक्षा के लिए !

शरत् : लेकिन जब जनता स्वयं नाश करने पर तुल जाय तो क्या हमें उसे ऐसा करने देना चाहिए ?

सुभाष : नहीं !

विजय : (एकदम) यही तो हमने किया ।

लक्ष्मी : और ठीक किया है ।

शरत् : और ऐसा करने का उन्हें अधिकार है । वे हैं ही इसीलिए । तुम इसे मानते हो तो फिर कहना क्या चाहते हो ?

सुभाष : यही कि हमें राज्य की रक्षा करते-करते प्राण दे देने चाहिए; प्राण लेने नहीं चाहिए । हमें देने का ही अधिकार है, लेने का नहीं !

शरत् : सुभाष ! यह कोरा आदर्शवाद है ।

सुभाष : कर्त्तव्य का पालन करते हुए मरना यदि आदर्शवाद है तो मैं कहूँगा कि विश्व के प्रत्येक नागरिक को ऐसा ही आदर्शवादी होना चाहिए ।

शरत् : सुभाष, तुम केवल बोलना जानते हो ।

सुभाष : आपसे ही सीखा है, भाईसाहब !

विजय : लेकिन ज़िम्मेदारी सम्हालना नहीं सीखा।

सुभाष : वह भी सीखा है। मैं जनता से प्रतिज्ञा करके आया हूँ कि आज शाम तक गोली चलाने वाले कप्तान-पुलिस को मुअत्तल कराके छोड़ूँगा।

अन्नपूर्णा : क्या'''क्या कहा तुमने ?

लक्ष्मी : अपने ही घर में तुम अपनों के दुश्मन बनकर आये हो !

सुभाष : अपना-पराया मैं कुछ नहीं जानता। मैं जनता का प्रतिनिधि हूँ। मैं माननीय उप-मन्त्री श्री शरत्‌चन्द्र को बताने आया हूँ कि उनके एक अधिकारी ने निहत्थी जनता पर गोली चलाकर जो बर्बर काम किया है, उसकी जाँच करवानी होगी और जब तक वह जाँच पूरी नहीं होती, तब तक गोली चलाने से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों को मोअत्तिल करना होगा।

शरत् : यह किसकी माँग है ?

सुभाष : उस जनता की जिसने आपको गद्दी सौंपी है, जिससे आज आप दूर भागते हैं, डरते हैं।

शरत् : मैं डरता हूँ ?

सुभाष : हाँ आप डरते हैं। यदि न डरते तो घर छिपकर बैठ रहने के बजाय जनता के पास जाते। तब यह नौबत न आती, गोली न चलती। निर्दोष, निहत्थे नागरिक न मरते !

शरत् : लेकिन तुम भी तो जनता के नेता हो, तुमने कौन-सा तीर मार लिया ?

सुभाष : मैंने क्या किया है, यह मेरे मुँह से सुनकर क्या करेंगे, पर इतना कहे देता हूँ कि जनता संयत न रहती तो कप्तान विजयचन्द्र यहाँ बैठे न दिखायी देते। इनसे पूछिये तो कि क्या इन्हें बन्दूकें इसलिए दी गयी हैं कि जरा-सा पत्थर आ लगे तो जनता को गोली से भून दें''''

लक्ष्मी : गोली न चलती तो ··

सुभाष : (एकदम) दादाजी, आप न बोलें। आप व्यापारी हैं। आपका सिद्धांत आपका स्वार्थ है····

लक्ष्मी : (एकदम आवेश में) मैं तो स्वार्थी हूँ, पर तुम अपनी कहो। तुम्हारी नेतागिरी भी तो मुझ स्वार्थी के पैसे ही से चलती है।

सुभाष : ठीक है, उतना पैसा सार्थक होता है····पर आप यह क्यों भूल गये कि उस दिन जब कुछ व्यापारी पकड़े गये थे, तो आपने विजय भैया को कितना कोसा था।

लक्ष्मी : और आज तुम कोस रहे हो! क्योंकि तुम मन्त्री नहीं हो, विरोधी दल के हो।

सुभाष : हाँ, मैं विरोधी दल का हूँ, लेकिन दादाजी! मैं आपसे बातें नहीं कर रहा।

लक्ष्मी : (क्रोध में) तो मैं ही कब तुमसे बातें कर रहा हूँ, वाह! (तेज़ी से अन्दर जाते हैं।)

अन्नपूर्णा : दादाजी, दादाजी····
(पीछे-पीछे जाती है, विजय भी जाते हैं।)

सुभाष : मैं माननीय उप-मन्त्री महोदय से पूछता हूँ कि····

शरत् : (एकदम) और मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्या जनता के राज में भी सड़कों पर प्रदर्शन होने चाहिए, भीड़ को क़ानून हाथ में लेना चाहिए?

सुभाष : जब तक सरकार और उसके अधिकारी ठीक आचरण नहीं करेंगे, तब तक जनता प्रदर्शन करती ही रहेगी। क़ानून हाथ में लेती रहेगी। भाईसाहब, इस नौकरशाही ने, शासन की इस भूख ने आपको जनता से दूर कर दिया है।

शरत् : सुभाष, तुम बार-बार एक ही बात की रट लगाये जा रहे हो।

सुभाष : मैं ठीक कह रहा हूँ। जनता सरकार के ढाँचे को उतना महत्त्व

नहीं देती, जितना अधिकारियों को ईमानदारी और हमदर्दी को। आप चलिये मेरे साथ....

(सहसा शोर बढ़ता है।)

शरत् : (एकदम) हाँ, मैं चलूँगा; मुझे तो कभी का चले जाना था, पर....यह शोर कैसा है?

सुभाष : अवश्य कोई बात है। देखूँ....

(जाने को मुड़ता है, तभी लक्ष्मीचन्द्र की पत्नी तारादेवी विक्षिप्त-सी वहाँ आती है।)

तारा : (पागल-सी) विजय कहाँ है?

(चारों तरफ देखती है।)

सुभाष : भाभीजी, क्या बात है?

तारा : मैं पूछती हूँ, विजय कहाँ है? उसका मनचाहा हो गया। उसकी गोली अरविन्द के सीने से पार हो गयी....

शरत् : (एकदम) भाभी!

सुभाष : भाभी, तुम क्या कह रही हो!

(सविता का प्रवेश)

सविता : भाभी ठीक कह रही हैं। अरविन्द जनता की सरकार की गोली का शिकार हो गया।

(लक्ष्मीचन्द्र, विजय, अन्नपूर्णा का प्रवेश)

लक्ष्मी : कौन गोली का शिकार हो गया?

सविता : अरविन्द!

लक्ष्मी : (काँपकर) क्या....क्या अरविन्द मर गया?

तारा : हाँ, गोली उसके सीने से पार हो गयी! वह मर गया!

[सब हक्के-बक्के रह जाते हैं। पागल-से देखते हैं। लक्ष्मीचन्द्र सोफे पर गिर पड़ते हैं। विजय दोनों हाथों से मुँह ढँक लेते हैं। अन्नपूर्णा पागल-सी तारा को सम्हालती है और बोलती है।]

अन्नपूर्णा : ओ, मेरे अरविन्द को किसने मार डाला ? नाश हो जाय इस पुलिस का। बिना गोली कोई बात ही नहीं करता ! अरे विजय, यह तुमने क्या किया !

विजय : (पागल-सा) ओह, यह क्या हुआ ? अरविन्द वहाँ क्यों गया था ?
(टेलीफोन की घंटी बजती है, सविता उठाती है।)

सविता : हलो; जी हाँ, हैं, (विजय से) कप्तानसाहब आपका फोन है।

विजय : (फोन लेकर) जी हाँ, क्या····भीड़ बेक़ाबू हो गयी है, टोलीगंज में····आया, अभी आया।
(चोंगा पटककर तेजी से किसी की ओर देखे बिना भागता है।)

सुभाष : मैं भी जाता हूँ, कहीं कुछ हो न जाय।
(जाता है।)

शरत् : मैं चलता हूँ।
(मुड़ता है पर जब तारा बोलती है तो ठिठक जाता है।)

अन्नपूर्णा : तारा भाभी भी अन्दर चलें।
(उठाती है।)

तारा : (पूर्ववत्) सब जाओ पर अरविन्द क्या आयगा ? उसने किसी का क्या विगाड़ा था ? वह चिल्लाया—'मैं दंगा नहीं करता, मैं बाजार जाता हूँ····!
(विक्षुब्ध हो जाती है।)

लक्ष्मी : पर मदान्ध पुलिसवालों ने एक न सुनी। पुलिस को अपनी जान इतनी प्यारी है कि एक दस वर्ष के बच्चे से भी उन्हें डर लगा····!

सविता : (जाते-जाते) किसी ने उसकी आवाज़ नहीं सुनी। किसी ने उसकी ओर नहीं देखा !

लक्ष्मी : सब अन्धे हैं। ताकत के अन्धे ! जो सामने आता है, उसे कुचल देना चाहते हैं। चाहे वह धूल हो चाहे पत्थर····!

शरत् (जाता हुआ व्यथा से) ओह, यह क्या हो रहा है ! यह क्या हुआ ?

लक्ष्मी : वही हुआ, जो विजय चाहता था, जो तुम चाहते थे।

शरत् : (एकदम) दादाजी....!

लक्ष्मी : (पूर्ववत्) तुमने मेरा घर बरबाद कर दिया। मेरे बच्चे को मार डाला, तुम सब हत्यारे हो....!

शरत् : दादाजी, ओह, मैं क्या कहूँ....!

लक्ष्मी : (पूर्ववत्) जब पैसे की जरूरत होती है तो मेरे पास भागे आते हो ! टैक्स माँगते हो; दान माँगते हो, व्यापार में पैसा लगाने को कहते हो और....मुझी पर गोली चलाते हो....!

शरत् : दादाजी, गोली उन्होंने जान-बूझकर नहीं चलायी। अरविन्द तो बच्चा था ! उससे किसी का क्या वैर था ?

लक्ष्मी : वैर क्यों नहीं था ? वह जनता में था और तुम हो जनता के शत्रु ! मैं अभी जाकर विजय से पूछता हूँ....!

(जाने को उठते हैं, सविता आती है।)

सविता : अभी रुकिये दादाजी। भाभीजी को दौरा पड़ गया है.... (टेलीफोन की घंटी बजती है, उठाती है।) हलो, जी हाँ, (शरत् से) आपका फोन है।

शरत् : (फोन लेकर) हलो, जी हाँ। क्या मंत्रि-मंडल की बैठक हो रही है, मुझे भी बुलाया है। मैं अभी आया !
(फोन रखकर जाने को मुड़ते हैं। तभी सुभाष का तेजी से प्रवेश।)

सुभाष : भाईसाहब ! आपको अभी चलना है।

शरत् : मैं चल ही रहा हूँ। मंत्रि-मंडल का बैठक हो रही है।

सुभाष : वहाँ नहीं, आपको मेरे साथ चलना है। आपको जनता के पास चलना है। जनता में बड़ी उत्तेजना है। विद्यार्थी पीछे रह गये, दूसरे समाजद्रोही तत्त्व आगे आ गये हैं और विजय ने गोली चलाने से इनकार कर दिया है।

शरत् : (पागल-सा) विजय ने गोली चलाने से इनकार कर दिया !

सुभाष : जी हाँ !

शरत् : वह कहाँ है ?

सुभाष : भीड़ के सामने !

शरत् : वह भीड़ के सामने हैं। (एकदम दृढ़ होकर) चलो सुभाष, मैं देखता हूँ, जनता क्या चाहती है ?

(दोनों जाते हैं।)

सविता : मैं भी चलती हूँ।

लक्ष्मी : मैं भी चलता हूँ।

सविता : नहीं; नहीं, आप ठहरें। आप भाभीजी को सम्हालें।

(जाती है, तभी अन्नपूर्णा आती है।)

अन्नपूर्णा : क्या हुआ दादाजी, सब कहाँ गये ?

लक्ष्मी : सब गये। सुभाष आया था। कहता था विजय ने गोली चलाने से इनकार कर दिया। अब....अब तो इनकार करना ही था। वे तो मेरे बच्चे को मारना चाहते थे....

अन्नपूर्णा : नहीं, नहीं, दादाजी ! यह बात नहीं थी।

लक्ष्मी : यह बात कैसे नहीं थी ? मैं उन सबको जानता हूँ। वे मेरे पैसे से आगे बढ़े और मुझी को बरबाद कर दिया। मैं पूछता हूँ, उन्होंने पहले ही गोली चलाने से इनकार क्यों न किया ? क्योंकि....क्योंकि....!

अन्नपूर्णा : नहीं, दादाजी, नहीं....!

लक्ष्मी : (आवेश में) ये मेरे छोटे भाई....एक ने मुझे स्वार्थी, देशद्रोही कहा, दूसरे ने मेरे बेटे को मार डाला। मेरे मासूम बच्चे को मार डाला, मार डाला....!

(रोकर गिर पड़ते हैं।)

अन्नपूर्णा : (सम्हालती हुई) दादाजी, दादाजी ! ओह, यह एक ही घर में क्या होने लगा। भाई-भाई में यह मनमुटाव। (एकदम) नहीं, नहीं, यह नहीं होगा। दादाजी, आप गलत समझ रहे हैं....!

लक्ष्मी : (आँखें खोलकर) मैं गलत समझ रहा हूँ....मैं गलत समझ रहा हूँ....अरविन्द, मेरे बच्चे, तू चला गया, मैं तुझसे दो बातें भी न कर सका, तू भीड़ में भी नहीं था ! अरविन्द....?

(तारा का प्रवेश)

तारा : अरविन्द ! क्या अरविन्द आया है ? कहाँ है ?

(अन्नपूर्णा तारा को पकड़ती है ।)

अन्नपूर्णा : भाभीजी, भाभीजी, आप क्यों उठ आयीं । हम अभी अस्पताल चलते हैं । आप अपने को सम्हालिए ।

[अन्दर ले जाती है । लक्ष्मीचन्द्र भी जाते हैं । तभी अस्त-व्यस्त परेशान सविता का प्रवेश ।]

सविता : (बोलती आती है ।) अद्‌भुत दृश्य था, अपार भीड़ थी, उसके आगे खड़े थे कप्तान भैया । दूर से देख सकी । किसी ने पास जाने ही नहीं दिया । एक रेला आया और मैं पीछे जा पड़ी ।

(अन्नपूर्णा आती है ।)

अन्नपूर्णा : तुम आ गयीं । वे लोग कहाँ हैं ? सुभाष कहाँ है ?

सविता : कुछ पता नहीं, मुझे किसी का कुछ पता नहीं । मैं आगे नहीं बढ़ सकी और वे दोनों आगे बढ़े चले गये । एक बार भीड़ के बीच में सबको देखा, फिर उस ज्वार-भाटे में सब कुछ छिप गया । (टेलीफोन की घंटी बजती है, उठाती है ।) हलो, जी हाँ, जी वे तो गये । जी हाँ, भीड़ में जाते मैंने देखा था । जी हाँ । (फोन रखती है ।) मंत्रि-मण्डल की बैठक में शरत् भाईसाहब का इन्तजार हो रहा है । वे अभी तक पहुँचे ही नहीं । मैं कहती हूँ ये लोग मंत्रि-मण्डल की बैठकें क्यों कर रहे हैं ! जो लोग विदेशियों की गोलियों से नहीं डरे, वे अपने ही बच्चों और भाइयों से क्यों डरते हैं ? जनता में क्यों नहीं आते....?

अन्नपूर्णा : क्योंकि शासन भीड़ में आकर नहीं चलाया जाता। आखिर जनतन्त्र भी तो कानून का राज है ?

सविता : है, पर····(एकदम) नहीं, अब वहस करने का समय नहीं है। सोचने का और काम करने का समय है। बेचारा अरविन्द ! उसकी मौत क्यों हुई ? जन-राज्य में एक निर्दोष, निरीह, बालक की हत्या क्यों हुई ? (टेलीफोन की घंटी फिर बजती है, उठाकर) हलो, क्या, हाँ, हाँ कप्तानसाहब तो कभी के चले गये। क्या, उनका पता नहीं मिल रहा ! नहीं नहीं, वे····वे भीड़ के सामने थे। मैंने देखा था। जी हाँ, मैंने देखा था। उधर का क्या हाल है; ठीक नहीं है। उनके हुक्म के बिना कुछ नहीं कर सकते····हाँ, हाँ, आये तो कह दूँगा····क्या कोई आया है। हाँ हाँ, पूछिये···· हलो····हलो····(फोन रखकर) कनेक्शन काट दिया····अवश्य कोई बात है। (जाने को मुड़ती है।) मैं जाती हूँ····।

अन्नपूर्णा : सविता, तुम न जाओ ! ठहर तो सविता····(सविता नहीं रुकती) गयी।

लक्ष्मी : (आकर) कौन गयी ? क्या बात है ?

अन्नपूर्णा : जरूर कोई बात है। सविता टेलीफोन कर रही थी, पता नहीं किसी ने क्या कहा, भागी चली गयी।

लक्ष्मी : तो मैं भी जाता हूँ। अरविन्द को भी लाना है।

(गला रुँध जाता है, तेजी से जाते हैं।)

अन्नपूर्णा : दादाजी ! अभी रुकिये ! किसी को आ जाने दीजिए।

लक्ष्मी : घबराओ नहीं, मैं बच्चा नहीं हूँ।

[जाते हैं, दूसरे द्वार से विजय की पत्नी उमा, आयु ४२ वर्ष, पागलों की तरह आती है।]

उमा : जीजी ! सब कहाँ हैं ?

अन्नपूर्णा : मुझे पता नहीं। यहाँ से तो कभी के गये। क्या सविता नहीं मिली ?

उमा : मुझे कोई नहीं मिला; अरविन्द की खबर सुनकर भागी आ रही हूँ। जीजी''''जीजी, मैं भाभीजी को कैसे मुँह दिखाऊँगी ? मैं मर क्यों न गयी !

अन्नपूर्णा : (शून्यवत्) न जाने क्या होनेवाला है ! एक ही घर के लोग एक-दूसरे को खा रहे हैं। (बाहर भीड़ का शोर) यह क्या ? लोग इधर आ रहे हैं।

उमा : (द्वार पर जाकर देखती है, चीख पड़ती है।) जीजी''''ई''''ई''!

अन्नपूर्णा : क्या हुआ ? क्या हुआ, उमा ?

[उठकर तेजी से आगे बढ़ती है। तभी घायल शरत् वहाँ आते हैं। मुख पर घाव है। एक हाथ बँधा है।]

अन्नपूर्णा : (काँपकर) आप ! यह क्या हुआ ?

शरत् : वही, जो होना चाहिए था। विजय भीड़ में कुचला गया, पर उसने गोली नहीं चलायी।

उमा : कुचले गये, कौन ?

शरत् : विजय कुचला गया। चला गया।

उमा : (चीखकर) भाईसाहब, वे कहाँ हैं ?
(भागती है।)

अन्नपूर्णा : (शरत् से) यह तुम क्या कह रहे हो ?

शरत् : भीड़ सन्तुलन खो बैठी थी, विवेक खो बैठी थी। वह चिल्लाती रही—'अरविन्द कहाँ है ? अरविन्द को लौटाओ !' और विजय भीड़ के सामने अड़ा रहा। चिल्लाता रहा—'मुझसे अरविन्द का बदला लो। मैंने अरविन्द को मारा है। तुम मुझे मार डालो !'

उमा : और भीड़ ने उन्हें मार डाला ?

शरत् : पता नहीं, किसने मार डाला''''उनके गिरते ही भीड़ पर जैसे अंकुश लग गया, पर''''पर''''जब वहाँ शान्ति हुई तो विजय और सुभाष दोनों कुचले हुए पड़े थे।

उमा : सुभाष भी !

अन्नपूर्णा : सुभाष भी कुचल गया ! हाय''''!

शरत् : हाँ, सुभाष भी कुचल गया। लेकिन खबरदार जो उनके लिए रोये। रोने से उन्हें दुःख होगा। उन्होंने प्राण दे दिये, पर शासन और जनता का सन्तुलन ठीक कर दिया। वे शहीद हो गये, पर दूसरों को बचा गये। नगर में अब बिल्कुल शांति है। सब मौन, सगर्व इन बलिदानों की चर्चा कर रहे हैं। सब शोक-संतप्त हैं। (बाहर देखकर) लो, वे आ गये। रोना मत''''रोना मत'''' (आगे बढ़कर) हाँ, वहीं लिटा दो''''

[तभी लक्ष्मीचन्द और सविता के साथ पुलिस के तथा दूसरे अधिकारियों का प्रवेश। धीरे-धीरे वे विजय, सुभाष और अरविन्द की लाशें बराबर के कमरे में लाकर रखते हैं। एक भयंकर सन्नाटा छाया रहता है। सविता का मुख पत्थर की तरह कठोर है। लक्ष्मीचंद तूफ़ान की तरह काँप रहे हैं। शरत् दृढ़ता से प्रबन्ध में लगे हैं। सहसा उमा तेजी से बढ़ती है, बराबर के कमरे में झाँककर जोर की चीख मारती है।]

उमा : माँ''''ऽऽरी''''ई''''यह क्या हुआ ?

(तारा अन्दर से आती है।)

तारा : कैसा शोर है अन्नपूर्णा ? अरविन्द आ गया ? कहाँ है ?

शरत् : भाभी, यह देखो, कमरे में तीनों लेटे हैं। कभी नहीं उठेंगे। ये अरविन्द और सुभाष हैं—यह जनता की क्षति है। और इधर यह विजय है—यह सरकार की क्षति है।

अन्नपूर्णा : (रोकर) यह तुम कैसी बावलों की-सी बातें करते हो। यह सब मेरे घर की क्षति है।

सविता : (उसी तरह पत्थरवत्) नहीं जीजी। यह घर की नहीं, सारे देश की क्षति है, देश क्या हमसे और हम क्या देश से अलग हैं ?

शरत् : तुमने ठीक कहा सविता। यह हमारे देश की क्षति है। जनतंत्र में सरकार और जनता के बीच कोई विभाजक-रेखा नहीं होती...!

(पर्दा गिरता है।)

वसन्त ऋतु का नाटक



लक्ष्मीनारायण लाल

[१९२५ ई०]

पात्र



वह आदमी
युवक के पिता
युवती के पिता
युवक

[खुला मंच, एरेना थियेटर। मंच पर महज़ एक आदमी खड़ा दिखायी देता है। शेष मंच पर अन्धकार है। वह आदमी पैण्ट और कमीज़ पहने हुए है। हाथ में छड़ी है, आँखों पर चश्मा है। अवस्था उसकी लगभग पैंतालिस वर्ष की है।]

वह आदमी—(दर्शकों से) कुछ ही दिन हुए मैंने अचानक ही संयोग से एक वसन्त देखा था। वह, वस अजव ही था। इतना अजव कि आप सवके सामने वह वयान नहीं किया जा सकता। इसीलिए मजवूरन आज उसी वसन्त-ऋतु का नाटक आपके सामने करना पड़ रहा है। मैंने उसे महज़ देखा था, तटस्थ रहकर केवल उसे अनुभूत किया था, मैं सिर्फ एक तीसरा आदमी था—इसीलिए मैं उसका पात्र नहीं था—न आज इस नाटक की भूमिका में ही हूँ। जव पात्र नहीं, तो भूमिका कैसी ? मैं तो वस, आप ही सवकी तरह एक दर्शक-मात्र था। तव भी और आज भी। खैर!…

आप सवको पता ही है—इलाहावाद में एक मशहूर और मारूफ पार्क है—अल्फ्रेड पार्क। पार्क के वीचों-वीच एक गोलाकार पुष्पोद्यान है; अपने चारों ओर एक रक्षा-परिधि से खिचा हुआ। उस परिधि में चारों दिशाओं से चार घुमावदार दरवाजे हैं—बाहर से भीतर जाने के लिए। उस परिधि के भीतर ही इधर-उधर वैठने के लिए अनेक वेंचें लगी हुई हैं। फिर सामने मौसमी पुष्पों की हरी-भरी सात त्रिकोनी क्यारियाँ हैं। अलग-अलग पुष्पों की—रंग-विरंगी—जैसे इन्द्रधनुष। जहाँ क्यारियों के शिखर हैं, वहाँ उस पुष्पोद्यान का वह 'वैण्ड सर्किल' है जिसमें दायीं-वायीं ओर संगमरमर की सिर्फ़ दो वेंचें हैं।

मार्च का महीना था—शुरू-शुरू के दिन। मौसमी फूल अब तक हँस रहे थे। लगता था, वसन्त ऋतु के हाथ में इन्द्रधनुष खिंचा है। रात के नौ बज रहे थे। पार्क तब तक सूना हो चुका था। अकेला मैं ही उस बाहरी परिधि की भीतरवाली एक बेंच पर गुम-सुम बैठा था। धीरे-धीरे फागुन का पछियाँव बह रहा था। मैं विचार-शून्य महज़ वहाँ बैठा ही था। सतमी का चाँद मेरे पीछे मौलश्री वृक्ष के ऊपर चुपचाप खड़ा था। तभी सहसा मैंने देखा, उत्तर दिशा से एक व्यक्ति और दक्षिण दिशा से दो व्यक्ति पार्क से होते हुए उसी पुष्पोद्यान के भीतर आते हैं। और (सहसा) अरे! क्षमा कीजिएगा, यह लीजिए; वे लोग तो जैसे खुद ही मंच पर आ रहे हैं। तो मैं फिर चुपचाप अपनी उसी बेंच पर बैठने जा रहा हूँ। देखिए, आप लोग बहुत ध्यान से सुनिएगा, हाँ! ये लोग यहाँ एक बड़ी मज़ेदार बात करने आये हैं।

[उस आदमी का प्रस्थान—बायीं ओर। मंच पर प्रकाश फैल जाता है। दृश्य उभर आता है। मंच के बीचों-बीच ऊँचाई पर उसी बैण्ड सर्किल का दृश्य है। दायीं-बायीं ओर वही दोनों छोटे गेट। दायीं ओर से दो बुजुर्गवार प्रवेश करते हैं। दोनों की अवस्था यही पचास वर्ष है। युवक के पिता का सिर खुला है—धोती-कुर्ता पहने हैं—ऊपर जवाहर बण्डी। युवती के पिता पैण्ट और बन्द गले के कोट में हैं, अर्थात् सूट में हैं। सिर पर सूट से मैच खाती टोपी है। बायीं ओर से युवक का प्रवेश। पैण्ट और बुशशर्ट पहने हुए। अवस्था यही छब्बीस-सत्ताईस वर्ष। बुजुर्गवार दायीं ओर की बेंच पर बैठते हैं—युवक बायीं ओर की बेंच पर।]

युवती के पिता : तो बात शुरू की जाये! क्यों शुकुलजी, ठीक है न!

युवक के पिता : बिलकुल। इसीलिए तो हम लोग यहाँ आये हैं; हैं जी! तो जजसाहब, बात कहाँ से शुरू की जाए? लीजिए, अब आपही शुरू कीजिए, हैं जी!

युवती के पिता : अजी साहव, मैं क्या बात शुरू करूँ ? आपही शुरू कीजिए ।

युवक के पिता : अजी साहव, आप शुरू कीजिए ।

युवती के पिता : कैसी बात करते हैं जी भाईसाहव ! और मैं क्या बात कर सकता हूँ ! शुरू कीजिए ।

युवक के पिता : नहीं, आप ।

युवती के पिता : नहीं, आप ।

युवक के पिता : नहीं-नहीं, आप ।

युवती के पिता : नहीं-नहीं, आप !

युवक के पिता : खैर, तो जजसाहव, यह बात भी क्या चीज होती है अपने-आपमें ! अहा-हा ! हैं जी ! ठीक कह रहा हूँ न !

[युवती के पिता चुप हैं ।]

युवक के पिता : अब यही बात देखिये न, क्या बात पैदा हो गयी है यहाँ ! यह पार्क ! यह फुलवारी ! यह ग़जब की 'प्रायवेसी' ! हैं जी !.... देखिए जजसाहव, ये अंग्रेज भी खूब थे । शहरों में पार्क की यह कल्पना उन्हीं अंग्रेजों की ही है, ताकि हम परदों में रहने-वाले इण्डियन्स यहाँ आकर अपने मसले हल किया करें । हैं जी ! अब देखिए न जजसाहव, यह संगमरमर की बेंच भी क्या चीज़ है । अहा-हा ! क्या बात है ! यही वह संगमरमर है जिस पर शाहजहाँ और मुमताज ने बैठकर कभी मुहब्बत की बातें की थीं । यही वह संगमरमर है—हैं जी, यही वह संग-मरमर है जिस पर कुइन विक्टोरिया ने बैठकर इंग्लैण्ड से हमारे हिन्दुस्तान पर हुकूमत की थी, हैं जी ! और यह वही संगमरमर है जहाँ हम बात कर रहे हैं ! ठीक है न ! अब आप बात शुरू कीजिए ।

युवती के पिता : जी हाँ....जी हाँ ! देखिये, आपको यहाँ आने में तकलीफ तो जरूर हुई होगी, लेकिन मैंने सोचा, यह जगह हर खयाल से

वड़ी उम्दा रहेगी। हम धर्मेन्द्र बेटे से खुलकर साफ-साफ बातें कर सकेंगे, और यह भी हमें खुलकर जवाब दे सकेगा।

युवक के पिता : जी हाँ, बिल्कुल ठीक ! अब देखिये न, बात शुरू हो गयी न !

युवती के पिता : हाँ, तो बात शुरू कीजिए।

युवक के पिता : लीजिये, अब आप फिर रुक गए ! बात शुरू रखिये न; बस बोलते रहिये ! हैं जी ! बात होती ही रहनी चाहिए। अब यही कि हम लोग यहाँ एक विवाह की बात करने आये हैं। ओहो, विवाह की बात भी क्या चीज होती है। अब शुरू कीजिए न ! हैं जी !

युवक : (सहसा उठकर) पिताजी, अब मुझे यहाँ से जाने की आज्ञा दीजियेगा।

युवक के पिता : यह सँभालो, हैं जी ! अब असली बात पैदा हुई। जजसाहब, मेरे बेटे का समय बड़ा ही कीमती है।

युवती के पिता : अरे बैठो बेटा, बैठो-बैठो !

युवक के पिता : अच्छा-अच्छा बैठ भी जाओ। हाँ जी, बात शुरू कीजिए।

युवती के पिता : समझ में नहीं आता, कैसे कहाँ से बात शुरू करूँ !

युवक के पिता : लीजिये, मैं शुरू कर रहा हूँ—हाँ, बेटा धर्मेन्द्र ! बात तुम्हारी शादी की है—मेरे दोस्त जजसाहब की इकलौती बेटी वासन्ती के साथ। हैं जी ! अब आगे बढ़िये।

युवती के पिता : बेटा, मेरी बेटी वासन्ती को तुम पिछले कई सालों से जानते हो। वह तुम्हें चाहती है, तुम उसे चाहते हो, और अब हमलोग भी चाहते हैं कि तुम दोनों की शादी हो जाये।

धर्मेन्द्र : जी।

युवती के पिता : तो तुम्हें अब शादी मंजूर है न ?

[धर्मेन्द्र चुप है।]

युवक के पिता : अरे तुम बोलते क्यों नहीं बेटा ? हैं जी····!

धर्मेन्द्र : क्या बोलूँ ?

युवक के पिता : अब सँभालो। हैं जी ! अब इन्हें भी बताना पड़ेगा कि यह हजरत क्या बोलें ! अरे बोलो, वासन्ती से अब तुम अपनी शादी करोगे न ?

[धर्मेन्द्र चुप है।]

युवती के पिता : शुकुलजी, आप तो जानते ही हैं—यह अब वासन्ती और धर्मेन्द्र की शादी का ही केवल सवाल नहीं है, यह तो अब मेरी इज्ज़त का सवाल बन गया है, क्योंकि पिछले कई वर्षों से मेरे सारे सगे-सम्बन्धी, नाते-रिश्तेदार—सभी को पता हो गया है कि वासन्ती और धर्मेन्द्र की शादी होने जा रही है।

युवक : यह झूठ है। बल्कि सबको पता है कि वासन्ती के पिता जजसाहब—जिनका शुभ नाम श्री रामकुमार वाजपेयी है—वह अपनी बेटी की शादी धर्मेन्द्र से नहीं करेंगे।

युवती के पिता : अरे रे रे ! क्यों नहीं ? क्यों नहीं ? मैं तुमसे अपनी बेटी की शादी क्यों नहीं करूँगा ? आख़िर क्यों ?

युवक : इसलिए कि हमारे समाज में यह ब्याह-शादी मनुष्य से, मनुष्य के रिश्ते से नहीं होती। हमारे यहाँ शादियाँ होती हैं नौकरी के रिश्ते से, पद और भौतिक ख़यालों से। ब्याह हमारे यहाँ महज़ एक कर्मकाण्ड है--एक परम्परा का पालन। यह जीवन-अनुभूति, जीवन-संगीत नहीं है।

युवती के पिता : भाई, समाज की तो बात मैं नहीं जानता, मैं सिर्फ़ अपनी बेटी को जानता हूँ। मुझे जब यह पता चला कि वह तुम्हें चाहती है, और तुम उसे चाहते हो, तो बस मैं भी यही चाहता हूँ, तुम दोनों का मंगल-ब्याह ज़रूर हो !

युवक के पिता : हैं जी ! ठीक किया आपने।

युवक : ठीक तो किया आपने। पर बहुत विलम्ब से (युवक भावनाओं में खड़ा हो जाता है।) काश, आपने यही निर्णय उस समय कर लिया होता, जबकि मैंने स्वयं वासन्ती से ब्याह के लिए आपको अपना विनम्र निवेदन दिया था! पर तब मैं सिर्फ एक साधारण व्यक्ति था—एक मनुष्य-मात्र—तभी आपकी निगाह में मेरी ज़रा भी इज़्ज़त नहीं थी। मैं अपदार्थ था तब। और आज जब मैं संयोग से डिप्टी कलक्टर हो गया तो सहसा एकदम से मैं मूल्यवान् हो गया। गोया मैं आदमी नहीं, शेयरमार्केट का भाव हूँ।

युवक के पिता : हैं जी! अब जवाब दीजिये बाजपेयीसाहब! बेटा, बैठ जाओ, तुम भावनाओं में आ गये हो न, हैं जी! तुम इस तरह थक जाओगे बेटा! हैं जी····!

युवती के पिता : सुनिये-सुनिये शुकुलजी, यह बात सच है कि तुम्हारी शादी के लिए जान-बूझकर मैंने मना कर दिया था, क्योंकि तब तुम मेरी नज़र में नाबालिग थे।

युवक के पिता : हैं जी, नाबालिग़! क्या कहा आपने? नाबालिग!

युवक : लेकिन उसी वर्ष जिस लड़के को आपने अपनी बेटी की शादी के लिए अपने घर लड़की दिखाने के लिए बुलाया था—उसकी उमर मुझसे एक साल कम थी।

युवक के पिता : पर बेटा, वह देखने में तो तुमसे बड़ा लगता रहा होगा, हैं जी! जजसाहब, मैं सच कहता हूँ, कुछ लोग ऐसे होते हैं कि वे बुड्ढे हो जाते हैं; पर लगते हैं नाबालिग़, और कुछ लोग नाबालिग़ रहते हैं पर लगते हैं बुड्ढे! हैं जी!

युवती के पिता : अजी शुकुलजी, आप तो मजाक करते हैं। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, सही कह रहा हूँ।

युवक : जी नहीं, आप सही नहीं कह रहे हैं। आज आप सिर्फ वक़ालत कर रहे हैं, जिसमें भावना नहीं, केवल एक निर्मम स्वार्थ है।

युवक के पिता : अरे मेरी बात तो सुनो बेटा !

युवक : आपने तब मेरी पवित्र भावनाओं को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि आप मुझे बिलकुल नहीं चाहते थे। आप मुझे एक गैर-जिम्मेदार अवारा लड़का समझते थे। जब मैं एम० ए० में सेकेण्ड डिवीजन पास हुआ तो आपने मेरे लिए कहा था—यह सिर्फ क्लर्क बनेगा।

युवक के पिता : हैं जी, जजसाहब, सुन रहे हैं न !

युवक : और जब मैं रेलवे में इन्सपेक्टर हुआ, तब आपने मेरे लिए कहा था—रेलवे के एक मामूली इन्सपेक्टर से डिस्ट्रिक्ट जज की लड़की की शादी नहीं हो सकती।

युवती के पिता : सुनो तो भाई ! ओहो, ओ सुनो तो !

युवक : ठीक है, आप मुझसे अपनी बेटी की शादी न करते। लेकिन जब मैं छुट्टी पाकर कुछ समय के लिए आपके घर आता था और आपके परिवार में बैठकर जब मैं वासन्ती से बातें करना चाहता था, तब आपको उतना भी क्यों असह्य होता था ? क्यों आप अपने कमरे में बेचारी वासन्ती की माँ को फटकारते हुए मुझे सुनाते थे कि यह धर्मेन्द्र क्यों यहाँ बैठकर सहगल के गाने गाता है ? मुझे यह क़तई पसन्द नहीं....।

युवती के पिता : सुनो-सुनो-सुनो ! मेरी बात भी तो सुनो !

युवक के पिता : ज़रूर-ज़रूर। हैं जी ! सुनो धर्मेन्द्र !

युवती के पिता : देखो, मेरे और तुम्हारे घर का पुराना सम्बन्ध है। तुम्हारे पिता मेरे दोस्त और सहपाठी रहे हैं। तुम्हारे पिता ज़मींदार थे। मैं मुन्सिफ़ से धीरे-धीरे आज डिस्ट्रिक्ट जज हुआ। तुम्हें हमेशा मैंने अपने लड़के की तरह माना। तो तुम्हें क्या मुझे डाँटने और सही रास्ते पर देखने का तब हक नहीं था ? मैं गोया एक बात कह रहा हूँ।

युवक के पिता : हैं जो, क्यों नहीं ?

युवती के पिता : मुझे कभी भी लड़के-लड़कियों का इस तरह हा-हा ठी-ठी करते देखने की आदत नहीं है। मैं डिसिप्लिन का सख्त क़ायल रहा हूँ।

युवक : झूठ है यह ! सरासर झूठ !

युवती के पिता : ओ हो धर्मेन्द्र ! तुम कैसी बातें कर रहे हो ?

युवक के पिता : देखो बेटा, जजसाहब की मज़बूरियाँ भी तो समझो तुम, हैं जी ! ज़रा बेटा, ठीक से बातें करो तुम।

युवक : बताइए न, मैं इनसे किस तरह से बातें करूँ ? इनकी बेटी वासन्ती की तरह मैं अपने संग छल करूँ क्या ?

युवती के पिता : छल ? कैसा छल ? शुकुलजी; यह धर्मेन्द्र क्या कह रहा है आज ?

युवक के पिता : हैं जी ! कमाल है; मैं भी कुछ नहीं समझ पा रहा हूँ।

युवक : आप लोग सब-कुछ समझते हैं, पर मुश्किल यह है कि आज उसे स्वीकार नहीं करना चाहते। आप सबको पता है—वासन्ती के सम्पर्क में मैं पिछले दस वर्षों से हूँ। मैं उसके समीप तब से हूँ जब से मैं अपने पिताजी के संग वासन्ती की बड़ी बहन साधना की शादी में जजसाहब के घर गया था। कानपुर में तभी मैंने वासन्ती को पहली बार देखा था। तब वासन्ती हाई स्कूल में पढ़ रही थी। हम दोनों अनायास एक संग खाते-पीते और बहन की शादी के कार्यों में हाथ बँटाते थे। वासन्ती ने मुझसे तब कहा था—यह धर्मेन्द्र नाम मुझसे नहीं लिया जाता। यह तो बड़ा 'सीरियस' नाम है। फिर उसने मेरा नाम रखा घम-घम पावस ऋतु ! (हँस पड़ता है।) घम-घम पावस ऋतु ! फिर मैंने भी उसका नाम रखा—बस-बस-बसन्त ऋतु !

युवक के पिता : ओहो ! वाह बेटा ! शाबाश····!

युवक : तभी पहली बार उसके सामने बैठकर मैंने सहगल का वह पहला गीत गाया था—सुनो-सुनो हे कृष्ण काला""। फिर उसके दो वर्ष बाद मैंने वासन्ती को पहला पत्र लिखा था, जो दुर्भाग्य से आपके हाथ में पड़ गया था, और जिसे आपने बड़ी नफ़रत से फाड़कर कूड़े में डाल दिया था।

युवती के पिता : ओहो, यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?

युवक के पिता : हैं जी! ज़रा ग़ौर कीजिये, हुई न एक बात! हैं जी! आगे बोल बेटा!

युवक : यह वासन्ती ने मुझे बताया था। और तब से मैं उसे कभी एक पत्र भी न भेज सका। पत्र लिखता था उसके लिए, पर उसे अपने पास ही रख लेता था।

युवती के पिता : शुकुलजी, दरअसल बात यह है कि मुझे इस तरह की चिट्ठी-पत्रियों से सख़्त नफ़रत है। यह क्या मज़ाक है, पण्डितजी!

युवक के पिता : हैं जी! यह तो अपने-अपने दिलो-दिमाग़ की बात है। बुरा मत मानियेगा, हैं जी! मैं कोई बुरी बात नहीं कर रहा हूँ। हाँ""बेटा, 'कैरी ऑन'।

युवक : इसके बाद वासन्ती एफ० ए० पास हुई और मैं उधर एम० ए० पास हुआ। वासन्ती की शादी के लिए तब तक लड़के देखे जाने लगे। उसी वक्त मैंने आपको वासन्ती से अपनी शादी के लिए प्रस्ताव दिया और आपने उसे बेरहमी से ठुकरा दिया।

युवती के पिता : भाई, मैंने वह सिर्फ़ 'डिसिप्लिन के प्वाइण्ट ऑव व्यू' से किया था।

युवक के पिता : हैं जी! बिलकुल ठीक किया था आपने! हैं! लौंडों की यह मज़ाल! आखिर हम लोग इतने ऊँचे कान्यकुब्ज ब्राह्मण हैं कि कोई मज़ाक है।

युवक : वासन्ती बी० ए० में पढ़ने लगी। उसे देखने के लिए बनारस

से एक लड़का आया—एम० बी० बी० एस० पास एक वर। उसने वासन्ती को देखा और वह वासन्ती को अस्वीकार करके चला गया। वासन्ती रोयी, बहुत रोयी, पर आपने उसे डाँट-फटकाकर चुप कर दिया।

युवती के पिता : जी हाँ, उसमें रोने की क्या बात थी! ऐसा तो होता ही है आजकल।

युवक के पिता : जी हाँ, देखिये यही जो हो रहा है! हैं जी!

युवक : तब मैं रेलवे में 'वेलफ़ेयर इन्स्पेक्टर' हो गया था, कानपुर में रहता था। और आप फ़तेहगढ़ में डिस्ट्रिक्ट जज थे। मैं हर इतवार को आपके यहाँ जाता था, पर मुझे वासन्ती से नहीं मिलने दिया जाता था। मैं सबके सामने उससे बात करता था; पर वह निरुत्तर मेरे सामने से हट जाती थी। मेरे खिलाफ़ जैसे आपकी कोई सख्त आज्ञा उस घर में चारों ओर खिंची रहती थी। मैं उसे मन-ही-मन अनुभव करता था, पर मैं अपने से लाचार था। उन्हीं दिनों एक दूसरा लड़का नैनीताल से वासन्ती को देखने आया था। मेरे सामने ही वह वासन्ती को अपने संग लिये हुए इधर-उधर सुबह से शाम तक घूमता रहा। आप भी उस समय बँगले पर मौजूद थे, पर उस दिन आपकी सारी कट्टरता न जाने कहाँ गायब थी! उस लड़के ने शादी में आपसे एक नयी कार और दस हज़ार रुपयों की माँग की थी—और इस तरह से वह शादी भी नहीं तय हो पायी।

युवती के पिता : बात यह है शुकुलजी कि वह लड़का मुझे पसन्द नहीं आया।

युवक : जी नहीं, उस लड़के को आपकी वह लड़की ही नहीं पसन्द आयी, इसलिए वह सौदा मँहगा ही था।

युवक के पिता : देखिए वाजपेयीजी, हैं जी! मेरा लड़का कभी झूठ नहीं बोलता। वाह रे मेरा बेटा! वाह! हैं जी!

युवक : वासन्ती फिर रोयी थी। वह भीतर से अपने कमरे को वन्द करके रोयी थी। और बाहर आँगन में मैंने फिर वासन्ती से अपनी शादी के लिए आपसे निवेदन किया था और आपने उसे भी ठुकराया था।

युवती के पिता : शुकुलजी, आपसे धर्म की क़सम खाकर कहता हूँ—दरअसल उस समय मैं अपने-आपमें नहीं था। मेरा सारा दिमाग़ खराव कर दिया था नैनीताल के उस लौंडे ने !

युवक : आप जज थे—ज़िले-भर के न्यायाधीश। आपका इस तरह दिमाग़ खराव हो जाना आपके लिए ठीक ही था। सच न्याय ऐसे में ही हुआ करता है।

[युवक के पिता ठठाकर हँसने लगते हैं। युवक अपनी जगह पर बैठ जाता है।]

युवक के पिता : (उठकर) भाई, माफ़ करना जजसाहब, मुझे वेहद हँसी आ गयी; हैं जी ! कैसे कहता है मेरा पूत ! वह भी किस अन्दाज़ से। 'न्याय ऐसे में ही हुआ करता है।' वाह ! (हँसते हैं।) ओहो, आनन्द आ गया। वुरा मत मानियेगा वाजपेयीजी, यह लीजिए, पान खाइये ! हैं जी !

युवती के पिता : खाइये आप !

युवक के पिता : अरे लीजिये तो ! विना पान के कैसे चलेगा, हैं जी ! अरे लीजिये तो (देते हैं।)। लो वेटा, तुम भी खा लो, तुम्हारा गला तो वेहद सूख गया होगा; हैं जी ! वैसे वाजपेयीजी, मेरा यह मुन्ना कभी पान तक नहीं खाता, इतना अच्छा वेटा ! आ हा हा ! न जाने कैसे तव इसके विषय में आपकी 'ओपीनियन' खराव हो गयी थी कि यह ऐसा-वैसा लड़का है ! अरे खूवसूरत है, खुशमिजाज है मेरा वेटा, गाना-वाना भी गा लेता है—तो ज़ाहिर है, लड़कियाँ

शुरू से ही इसके आस-पास घूमेंगी ही। इसमें मेरे बेटे का क्या दोष! ज़रा सोचने की बात है, हैं जी!

युवती के पिता : शुकुलजी; क्या बताऊँ, बस उस समय ग़लती हो ही गयी!

युवक के पिता : दरअसल मेरे बेटे का चेहरा ही ऐसा है, हैं जी! होता है, कभी-कभी ऐसा, हैं जी!

युवती के पिता : शुकुलजी, एक ग़लती और भी हुई। बैठिये तो बताऊँ—ज़ोर से कहने लायक़ बात नहीं है।

[युवक के पिता बैठते हैं।]

युवती के पिता : मेरी बेटी ने भी दरअसल मुझे कभी इस बात का संकेत नहीं दिया कि वह धर्मेन्द्र को इतना चाहती है।

युवक के पिता : अजी, कुछ लड़कियाँ बड़ी चुप्पी होती हैं।

युवती के पिता : वासन्ती की माँ ने भी मुझे कुछ नहीं बताया।

युवक : किसी ने नहीं बताया, किसी ने कुछ संकेत नहीं किया—क्योंकि वह आप नहीं चाहते थे, क्योंकि आपको प्रसन्न रखना आपके घरवालों की पहली जिम्मेदारी थी।

युवती के पिता : धर्मेन्द्र मेरी बात तो सुनो!

युवक : किसी में इतना व्यक्तित्व हो तो कि आपसे कोई अपने मन की बात कह सके!

युवक के पिता : (किंचित् गुस्से से खड़े होकर) क्या मतलब तुम्हारा? यह व्यक्तित्व किसे कहते हैं?

युवक : पर्सनाल्टी को।

युवक के पिता : ह्वॉट इज़ पर्सनाल्टी?

युवक : यह एक चिड़िया होती है।

युवक के पिता : चिड़िया होती है!

युवक : जी हाँ, एक चिड़िया!

युवक के पिता : क्या कहा?

युवक : हैं जी, कुछ नहीं !

युवक के पिता : (सहसा बदलकर) ओ हों ! अच्छा जी, अब मेरा लड़का मज़ाक के मूड में है। वाजपेयी, वस यही मौक़ा है असली ! वस, झट से असली बात पर आप आ जाइए।

युवती के पिता : ठीक कहते हैं आप ! सुनो बेटा, भूल जाओ मेरी उन ग़लतियों को ! बस, मेरी बेटी वासन्ती से अपनी शादी अब मंजूर कर लो !

युवक के पिता : अरे भाई, जो कुछ देना हो, वह भी तो बता दो इसी समय !

युवती के पिता : दस हज़ार रुपये !

युवक के पिता : बस ! और वह नयी कार ?

युवती के पिता : ठीक है—आखिर यह मेरी लड़की है—उस नयी कार का भी इन्तज़ाम जरूर ही करना होगा।

युवक के पिता : अब हाँ कर दे बेटा ! मेरा मुन्ना''''राजा बेटा !

युवक : (तेज़ी से खड़ा होकर) नहीं; यह शादी मैं हर्गिज़ नहीं कर सकता।

युवक के पिता : क्या ?

युवक : अब यह शादी हर्गिज़ नहीं कर सकता।

युवती के पिता : क्या ?

युवक : मुझे यह शादी मंजूर नहीं।

युवती के पिता : आखिर क्यों ?

युवक : मैं कोई सौदा नहीं हूँ जो इस तरह मैं कहीं बेचा और खरीदा जाऊँ।

युवक के पिता : धर्मेन्द्र, क्या तुझे कुछ होश-हवास नहीं ?

युवक : खूब होश है मुझे ! जहाँ व्यक्ति का मूल्य नहीं, उसकी भावनाओं की इज्ज़त नहीं, वहाँ इस शादी का कोई मूल्य नहीं।

युवती के पिता : ऐसा मत कहो बेटा ! मैं तुमसे हाथ जोड़ता हूँ।

युवक : आज मैं संयोग से डिप्टी-कलक्टर न हुआ होता, तो क्या आप वासन्ती से मेरी शादी करते ? नहीं, कभी नहीं ! हर्गिज़ नहीं !

युवती के पिता : शुकुलजी, समझाइये इसे !

युवक के पिता : जज़साहब, मैं ऐसे लौंडों से अब बात नहीं करना चाहता। खतम हुआ सब ! इसकी यह हिम्मत जो मेरी बात काट दे ! तुझे पता है, मैं तेरा बाप हूं ।

युवक : जी, पता है ।

युवक के पिता : क्या पता है ?

युवक : कि लोग कहते हैं कि आप मेरे बाप हैं।

युवक के पिता : (क्रोध में) क्या कहा ? मैं तेरी जुबान खींच लूँगा । तू मुझसे मज़ाक करता है ? तू मेरे गुस्से को नहीं जानता ? अरे, मैं तेरी डिप्टी-कलक्टरी को तेरे सिर में डाल दूँगा ।

युवती के पिता : शान्त रहिये शुकुलजी ! इस तरह यहाँ गार्डेन में गुस्सा करने से कोई फ़ायदा नहीं ।

युवक के पिता : हैं जी !

युवती के पिता : चलिये, चला जाये अब यहाँ से ।

युवक के पिता : जी हाँ, अब मैं घर पर पहुँचकर इत्मीनान से अपना यह गुस्सा करूँगा । आजकल के लौंडे अपने-आपको समझते क्या हैं ? चलिये, चला जाये अब यहाँ से । ओ हो, हद हो गयी ! हैं जी ! (दोनों बुजुर्ग चुपचाप दायीं ओर निकल जाते हैं । युवक बायीं ओर से जाता है । सहसा उसी ओर पृष्ठभूमि से किसी की हँसी सुनायी देती है ।)

युवक : जी, कौन हैं आप ?

एक आदमी : एक आदमी ।

युवक : आप यहाँ इस तरह क्यों छिपे बैठे थे ?

एक आदमी : जी, यह पार्क है। मैं वहाँ वेंच पर बैठा था—क्यों आपको कोई एतराज है क्या ?

युवक : आपको हँसी किस वात पर आयी ?

एक आदमी : हँसी आती है—इसलिए आयी !

युवक : तो आप यहाँ हमारी 'पर्सनल' वातें सुन रहे थे। आप लेखक-वेखक़ तो नहीं हैं ?

एक आदमी : वेखक तो नहीं, हाँ, लेखक जरूर हूँ। (आदमी बढ़कर वैण्ड-सर्किल में चढ़ जाता है।)

युवक : (वहीं नीचे से ही) आप कवि हैं या कहानीकार ?

एक आदमी : जी, मैं नाटक लिखता हूँ।

युवक : ओ हो ? तो आप नाटककार हैं ? आपका शुभ नाम ?

एक आदमी : क्यों ? आप मुझ पर कोई मुकदमा चलाएँगे क्या ? भाई, आप मजिस्ट्रेट हैं।

युवक : जी नहीं। पर आपसे मैं यह वचन चाहता हूँ कि आप इस पर कोई नाटक नहीं लिखेंगे। यह मेरा व्यक्तिगत प्रेम-विषय है।

एक आदमी : व्यक्तिगत प्रेम-विपय ! तो फिर आप वासन्ती से अपना व्याह क्यों नहीं कर लेते ?

युवक : मैं व्याह नहीं कर सकता।

एक आदमी : आख़िर क्यों ?

युवक : मेरा अपमान हुआ है।

एक आदमी : लड़की के वाप ने आपका अपमान किया है—इसमें बेचारी लड़की का क्या दोप ?

युवक : वह भावनाहीन है।

एक आदमी : हो सकता है, उसका प्रेम मौन हो।

युवक : यह आपको कैसे पता ? आप मुझे अच्छे आदमी नहीं लग रहे हैं।

एक आदमी : आप तो अच्छे आदमी हैं न ?

युवक : आपसे मतलब ?

एक आदमी : मुझे आपसे सिर्फ़ यही कहना है कि आप उस लड़की से शादी क्यों नहीं कर लेते ?

युवक : मैं पूछता हूँ, आपसे मतलब ? इन्हें खामखाह इतनी चिन्ता हो आयी कि मैं उस अच्छी नेक सीधी-सादी लड़की से अपनी शादी क्यों नहीं कर रहा हूँ।

एक आदमी : जी, आप मुझे इस तरह डाँट क्यों रहे हैं ?

युवक : क्योंकि यह मुझे अच्छा लग रहा है।

एक आदमी : आप बड़े अच्छे आदमी हैं।

युवक : आप किसी दूर के रिश्ते से लड़की के भाई तो नहीं हैं ?

एक आदमी : क्यों ? तब आप उससे शादी कर लेंगे क्या ?

युवक : (आवेश में) अजी आप कौन होते हैं इस तरह उस लड़की की शादी के लिए वकालत करनेवाले ? आपको क्या पता है-कि पिछले कितने सालों से मैं किस तरह की आग में जल रहा हूँ।
[तेजी से युवक का बायीं ओर प्रस्थान। वह आदमी वहीं आश्चर्यचकित खड़ा रह जाता है।]

वही आदमी : (दर्शकों से) देखिए न, यह नाटक यहीं अकस्मात् खत्म हो गया। नाटक का हीरो ही एकाएक चला गया। बेचारी हिरोइन का तो कुछ पता ही न चला। वह तो दृश्य में ही नहीं आयी। क्या करूँ मैं ? बस इतना देखा ही था मैंने वह खेल। पता नहीं; आगे क्या हुआ इसका अन्त ? ठीक है—आप लोगों को पता ही चल गया होगा। अच्छा नमस्ते ! मेरा यह नाटक खत्म !
[सहसा दर्शकों में से एक व्यक्ति उठ खड़ा होता है।]

व्यक्ति : अजी नाटक कहाँ कैसे खत्म हुआ ? अब क्या छिपाऊँ—संयोग से वह असली धर्मेन्द्र तो मैं हूँ यहाँ। (बगल में बैठी लड़की को

उठाता हुआ) आओ चलो वासन्ती, वहाँ ऊपर चलें। (बायीं ओर से वे दोनों आते हैं।)

आदमी : (तब तक) अरे गजब हो गया यह तो ! भाई, माफ़ करना धर्मेन्द्रबाबू ! मैं वह नाटककार नहीं हूँ जिसने आपको उस पार्क में देखा था। मैं सिर्फ़ एक आदमी हूँ। (भाव बदलकर) आइए-आइए, चले आइए, शरमाइए नहीं। हाँ, सीढ़ियों से ऊपर चढ़ जाइए, डरिए नहीं। यह अल्फ्रेड पार्क का वह असली बैण्ड-सर्किल नहीं है। (दोनों बैण्ड-सर्किल में जाकर खड़े हो जाते हैं।)

धर्मेन्द्र : जी, मैं ही वह धर्मेन्द्र हूँ। और यह वही वासन्ती है। आप लोगों के आशीर्वाद से तभी हम लोगों का ब्याह हो गया।

[सहसा दर्शकों में से एक दूसरा व्यक्ति उठ खड़ा होता है।]

दूसरा व्यक्ति : अरे सिर्फ़ ब्याह क्यों कहता है बेटा ? हैं जी ! प्रेम-विवाह कह न ! हैं जी !

आदमी : जी, आप कौन हैं ?

दूसरा व्यक्ति : हैं जी, घबराइए नहीं। मैं वहीं आकर आपको बताता हूँ। हाय राम ! अब तो परदा-फ़ाश हो ही गया है।

आदमी : आइए....आइए....तशरीफ़ ले आइए !

[बायीं ओर से दूसरे व्यक्ति का प्रवेश]

दूसरा व्यक्ति : (दर्शकों से) हैं जी ! मैं इस असली धर्मेन्द्र का वह असली पिता हूँ—श्री दीनबन्धु शुक्ला। हैं जी ! दरअसल बड़ा तेज़ है यह मेरा बेटा। 'वेरी फ़ास्ट' जिसको अंग्रेजी में कहते हैं। वासन्ती बेटी के वह पिता (सहसा दर्शकों से) हैं जी, आप भी तो कहीं नहीं छिपे हैं यहीं ! शुक्र है, वह नहीं हैं यहाँ। हाँ जी, तो मैं यह बता रहा था कि वह जजसाहब—श्री यशोदानन्दजी बाजपेयी एक बड़े ही टेढ़े आदमी थे। अव्वल दरजे के शक्की, क्रोधी और मक्खी-चूस ! भाइयो और बहनो ! अगर मेरे इस लाड़ले बेटे ने उनसे

'नहीं-नहीं' कर वह नाटक नहीं रचा होता, हैं जी, तो मेरे बेटे और वासन्ती की शादी न हो पाती। और अगर बड़ी मुश्किल से करते भी तो मुझे और मेरे बेटे को ब्याह में एक पैसा भी न मिलता। हैं जी! क्योंकि यह प्रेम-ब्याह था न!

बड़ा अच्छा नाटक था यह! हैं जी! (आदमी से) हम पर यह नाटक लिखकर आपने काम तो अच्छा नहीं किया है— पर खैर, जाइए, माफ़ किया आपको! हैं जी, ज़रा अपने ऐक्टरों को तो यहाँ बुलाइए मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।

[दायीं ओर से युवक के सभी नेताओं का प्रवेश— आगे-आगे वही युवक के पिताजी की भूमिका करनेवाला है।]

पिताजी : हैं जी, आप ही हैं वह!

युवक के पिता : हैं जी, आप ही हैं वह!

पिताजी : वही एक ही सवाल, हैं जी?

युवक के पिता : वही एक ही सवाल, हैं जी!

पिताजी : खैर! मुझे आप सबसे मिलकर बड़ी खुशी हुई—हैं जी!

[ऊपर बैण्ड-सर्किल में जाकर]

पिताजी : भाइयो और बहनो! अपने बेटे की इस शादी की खुशी में मैं आप सबको एक डिनर देना चाहता हूँ—हैं जी, आप लोग अपने-अपने घर जाकर खुशी से मेरा वह डिनर खाइए। हैं जी!

[परदा]

एकांकी और एकांकीकार

डॉक्टर रामकुमार वर्मा—रचित औरंगजेब की आखिरी रात विषयगत वर्गीकरण के अनुसार ऐतिहासिक एकांकी है। शैली-गत वर्गीकरण की दृष्टि से इसे रंग-एकांकी कहा जा सकता है। रंगमंचीय सीमाओं को ध्यान में रखते हुए यह लिखा गया है और अचितित्रय का इसमें निर्वाह हुआ है। इसके आरंभ में रंगनिर्देश बड़े विस्तार से दिया गया है। इस एकांकी में मुखाभिनय के पर्याप्त उदाहरण हैं। नेत्राभिनय के अनेक रूप-प्रदर्शन के अवसर इसमें आये हैं। स्वरों के उतार-चढ़ाव, खाँसी, मरणाभिनय इन सबका अच्छा प्रदर्शन इस एकांकी के अभिनय में अपेक्षित है। इस दृष्टि से यह एक अच्छा रंग-एकांकी है।

डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल ने 'औरंगजेब की आखिरी रात' जो 'मेलोड्रामा—प्रतिनाटक' कहा है। ऐसा एकांकी, जिसमें कथानक की अत्यंत नाटकीय योजना की गयी है जिसमें उत्तेजनापूर्ण भाषा भी है और व्यवहार भी।

जैसा कि स्पष्ट है कि १७०७ ई० औरंगजेबी राज्य का उत्तरांश इस एकांकी की घटना का समय है—इस प्रकार इसका आधार ऐतिहासिक है। इतिहास की दृष्टि से यह एकांकियों में भी उल्लेखनीय है कि इसमें औरंगजेब के प्रश्नों का हवाला भी दिया गया है। रंग-संकेत में एकांकीकार ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचय दे ही दिया है।

डॉ० रामकुमार वर्मा अपने ऐतिहासिक रूपकों में व्यक्ति-विशेष के चारित्रिक रूप का उद्घाटन प्रायः करते रहे हैं। इतिहास अथवा पुराण की घटनाओं को आधार बनाकर आज के मानव-मन की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न प्रायः उन्होंने किया है, साथ ही मौलिक अनुसंधान-प्रवृत्ति का परिचय भी उनके ऐतिहासिक विचारधारा में मिलता है। मोहनराकेश के अनुसार "औरंगजेब की आखिरी रात' हिंदी के उन ऐतिहासिक एकांकियों में है, जो इतिहास के मानवीय

पक्ष को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। संवादों में भावुकता और थोड़ा शब्दाडंबर रहने पर भी इस दृष्टि से इस नाटक का अपना महत्त्व है।"

इस एकांकी में मरणोन्मुख मुगल सम्राट् के मन की छटपटाहट अत्यंत नाटकीय रूप में उजागर की गयी है। उठायी गयी मूल घटना का संकेत बड़ी दूर तक जाता है। जिस व्यक्ति का जीवन निरंतर घृणा, संदेह और नृशंस अत्याचारों से व्याप्त रहा है, उसकी मृत्यु जब उपस्थित होती है तब उसकी मानसिक हलचल न केवल उसके जीवन के खोखलेपन को ही व्यक्त कर देती है, प्रत्युत उस प्रकार के जीवन के प्रति एक घृणा का भाव भी उत्पन्न कर देती है। इस एकांकी का प्रमुख पात्र औरंगजेब उन सभी दमनकारी शक्तियों के प्रतीक रूप में उभरकर आता है, 'जो अपनी-अपनी सत्ता और प्रभुता के दंभ के नीचे जीवन के सभी कोमल मूल्यों को कुचल देने का प्रयत्न करती है।' ऐसी शक्तियों का क्षय बड़ा दुःखांत होता है। इस एकांकी की मूल भावना यही है।

रंगमंच की दृष्टि से यह एकांकी पर्याप्त उपयुक्त और प्रभावशाली है।

डॉ० रामकुमार वर्मा अध्यापक, आलोचक, कवि और एकांकीकार तथा नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हैं, किंतु उनकी प्रतिभा का सर्वोत्तम रूप उनके एकांकी ही हैं। एकांकी के माध्यम से वे किसी-न-किसी विचार का प्रतिपादन किया करते हैं। पात्र और परिस्थितियाँ उनके विचार का पोषण किया करती हैं। पृथ्वीराज की आँखें, दीपदान, रेशमी टाई, चारुमित्रा, सप्तकिरण, रिमझिम आदि उनके प्रमुख एकांकी-संग्रह हैं।

स्व० भुवनेश्वर (भुवनेश्वरप्रसाद सक्सेना) रचित 'ऊसर' १९३८ ई० में 'हंस' में प्रकाशित हुआ था। १९७१ ई० में प्रयाग से प्रकाशित उनके संकलन 'कारवाँ तथा अन्य एकांकी' में यह संकलित है। विषयगत वर्गीकरण की दृष्टि से यह एक मनोविश्लेषणात्मक समस्या नाटक है। इसका आधार व्यावहारिक मनोविज्ञान है, जिसमें पश्चिमी सभ्यता से आक्रांत उच्चवर्ग का चित्र उपस्थित किया गया है। सारा घर कुत्ते की चिंता और बेबी की देख-रेख में परेशान है और गरीब ट्यूटर का वेतन भी दो महीने से नहीं मिलता। गृहस्वामी और गृहस्वामिनी पूछे गये

प्रश्नों का जो उत्तर देते हैं, उनसे उनकी विकारपूर्ण मनोदशा स्पष्ट हो जाती है। डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल ने 'ऊसर' को 'प्रवृत्तवादी नाटक' कहा है। 'ऊसर' अपने संवादों के लिए विशेष रूप में उल्लेखनीय है—इसमें 'कथानक' से बाहर के साधारण बातचीत के टुकड़े कहीं-कहीं इस तरह पिरो दिये गये हैं 'कि यथार्थ दमक उठता है।'

अनेक विद्वान् भुवनेश्वर को हिन्दी-एकांकी का प्रारंभकर्ता मानते हैं। यह विवादास्पद हो सकता है, किंतु यह निःसंदिग्ध है कि उनके एकांकी हिंदी में एक नया विकास और नया मोड़ देनेवाले हैं। उनका रचना-काल १९३३ से १९५० ई० तक है। उनका प्रथम एकांकी है—'श्यामा एक वैवाहिक विडंबना' जो हंस में प्रकाशित हुआ था, तथा अंतिम कृति है—'सीकों की गाड़ी।' भुवनेश्वर के कुल पच्चीस एकांकी प्राप्त हैं। भुवनेश्वर के कथन के अनुसार "नाटककार का पूर्ण विकास तब होता है, जब वह स्वयम् अपने असत्य पर विश्वास करने लगता है। समस्या नाटक का केवल एक उद्देश्य है, किसी समस्या को एक हास्यास्पद तुच्छता असंभवता बना देना।"

आलोचकों का अभिमत है कि भुवनेश्वर के एकांकी भारतीय नामरूप में पाश्चात्य आत्मा को छिपाये हुए हैं। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार "भुवनेश्वर पर अंग्रेजी प्रभाव स्पष्ट है। शॉ की व्यंग्योक्तियों ने उन्हें विशेष रूप से आकर्षित किया है—उनकी कथावस्तु, शैली और विचारधारा पर भी शॉ का बहुत कुछ प्रभाव है।"

सेठ गोविंददास के अनुसार "श्री भुवनेश्वरप्रसाद एक सफल टेकनीशियन हैं। जीवन में आकस्मिकता को महत्त्व देते हैं। इनके एकांकियों में पूर्वपीठिका बिलकुल नहीं है।.........रूढ़िग्रस्त समाज के प्रति इनके एकांकियों में गहरे असंतोष का भाव है। अवसाद और उद्विग्नता की जो अंतर्ध्वनि यहाँ सुन पड़ती है, वह नष्ट होते हुए समाज में स्वाभाविक है। आपकी शैली तथा कथावस्तु पर पाश्चात्य जीवन-दर्शन और एकांकियों में बर्नार्ड शॉ का विशेष प्रभाव है।"

मोहनराकेश के अनुसार "भुवनेश्वर अपने नाटकों में जितना कुछ कहते हैं, उससे कहीं अधिक अनकहा छोड़ देते हैं.........जो अनकहा रहता है, उसी का अर्थ सबसे अधिक मन को छूता है।"

आलोचकों ने 'ऊसर' को 'ड्राइंगरूम के लिए लिखा गया नाटक' कहा है। भुवनेश्वर को डॉ० रामकुमार वर्मा के साथ-साथ हिंदी के पहले चरण का प्रतिनिधि एकांकीकार कहा जाता है। डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल ने कहा है कि भुवनेश्वर के "उस समय के लिखे हुए एकांकियों का रंग-क्षेत्र, रंग-शिल्प या तो ड्राइंगरूम हैं, या रेस्तराँ अथवा होटल का कमरा। और एकांकी का सारा प्राणतत्त्व कथोपकथनों में प्रतिष्ठित हुआ है।" विपिनकुमार अग्रवाल के शब्दों में "नये नाटककार का काम वहुत कठिन है। वेतरतीव वार्तालाप, वेढंगी परिस्थितियों और अपरिचित पात्रों को नाटक में निभाना लेखक के लिए एक नये प्रकार के अनुशासन और चौकसी की माँग करता है।" 'ऊसर' 'संवाद-योजना' ऐसे ही अनुशासन और चौकसी में हुई है।

स्व० श्री उदयशंकर भट्ट—रचित 'नये मेहमान' उनके एकांकी-संग्रह 'धूम-शिखा' में संकलित है। विषय की दृष्टि से यह सामाजिक एकांकी है, जिसमें जीवन में नित्य घटनेवाली घटना को आधार वनाया गया है। महानगरों के जीवन से संवद्ध यह एक यथार्थवादी घटना है, जिसका संवंध मध्यम श्रेणी के परिवार से है। मेहमानों, विशेषतः अनभीप्सित अतिथियों की समस्या को जिस रूप में महानगरों के वासी मध्यम श्रेणी के परिवार नित्य झेला करते हैं, उसका उसमें यथार्थ चित्र उपस्थित किया गया है। रंग-संकेत की दृष्टि से इसमें अभिनय की कई अच्छी संभावनाएँ हैं। रेडियो-रूपक के रूप में इसका अच्छा उपयोग हुआ है। भट्टजी अपने सामाजिक एकांकियों में जीवन की नित्य घटनाओं से संबद्ध समस्याओं को प्रायः उजागर करते रहे हैं। दैनिक जीवन से कोई घटना या दृश्य उठाकर वड़े-से-वड़ा प्रहार करना और मानव-मस्तिष्क को झनझना देना भट्टजी की विशेषता है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार उनके एकांकियों में "कथा-संकोच एवम् एकाग्रता के आग्रह से कल्पना का विकास कम और नाटकीय संवेदना का स्पंदन अधिक स्पष्ट हो गया है।"

डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल ने 'नये मेहमानों' को 'सुखांतकी' कहा है। यह कदाचित् इसी आधार पर कहा गया है कि इसका अन्त उल्लासमय है और सम्पूर्ण घटना हलके-फुलके वातावरण से पूर्ण है।

भट्टजी का प्रथम एकांकी 'दुर्गा' सन् १९३४ में प्रकाशित हुआ था। १९३५ ई० में प्रकाशित सेठ गोविंददास के मंतव्य के अनुसार भट्टजी के "सत्रह बड़े नाटक तथा ग्यारह एकांकी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी नाटकीय प्रतिभा विविध शैलियों—बड़े नाटक, एकांकीरूपक, ध्वनिरूपक, काव्यरूपक और विविध विषयों के नाटक लिखने में स्पष्ट हुई है। विषयों की विविधता के साथ उनमें शैलियों की नवीनता एवं आधुनिक जीवन और समाज का जीता-जागता चित्रण भी है।"

डॉ० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने उनके रंग-धर्म के विषय में लिखा है कि रंग-संकेतों में वे समय, पात्र की वेश-भूषा, बात-चीत का ढंग, बैठने-उठने की दशा और परिस्थिति से सामंजस्य का प्रयत्न सभी एक साथ देखे जाते हैं, कमलेश के अनुसार "जहाँ तक सचेतन प्रवृत्ति को आधार लेकर नाटक के क्षेत्र में साहित्यिकता और अभिनेयता को लेकर चलने का प्रश्न है, 'भट्टजी' श्रेष्ठ कलाकार हैं।"

भट्टजी की जीवन-दृष्टि चिन्तन और अनुभव से पुष्ट है, जो प्राचीन और नवीन, प्रवृत्ति और निवृत्ति, अनुशासन और स्वच्छन्दता में सहज ही सन्तुलन कर लेती है और इस युग की समस्याओं के मर्म तक पहुँचकर व्यंग्य के द्वारा उनके समाधान की ओर संकेत कर देती है। उनके एकांकी रूप में व्यक्ति और समाज का मनोविज्ञान अत्यन्त कुशलता के साथ उभारा गया है। उनके रूपकों में अन्तर्द्वंद्वों की मार्मिक व्यंजना है।

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क का 'लक्ष्मी का स्वागत' १९३७ ई० में लिखा गया सामाजिक दृष्टिप्रधान एकांकी है। हिन्दू-परिवार में अपने समय में व्याप्त एक निर्मम चलन पर इसमें तीखा व्यंग्य किया गया है। बच्चा मर रहा है, उसकी माँ पहले ही मर चुकी है—पर इसी वातावरण में घर के बड़े-बूढ़े बच्चे के बाप का पुनर्विवाह करने को तैयार बैठे हैं। उधर बच्चा मरता है और दूसरी ओर बाप के नये ब्याह का सगुन ले लिया जाता है—यही 'लक्ष्मी के स्वागत' का व्यंग्य है और नाटकीयता है। अन्धविश्वास और दकियानूसी विचारों पर इसमें मर्मस्पर्शी व्यंग्य किया गया है। सेठ गोविन्ददास ने अश्क के इस एकांकी को

उनके पाश्चात्य शैली से प्रभावित एकांकी-रूपकों में गिना है। रंगमंच पर इसका सरलतापूर्वक प्रभावकारी प्रयोग किया जा सकता है। रेडियो-रूपक की भाँति भी इसका उपयोग हो सकता है।

उपेन्द्रनाथ अश्क हिन्दी एकांकी के क्षेत्र में यथार्थवादी परम्परा का सूत्रपात करनेवाले प्रमुख एकांकीकारों में हैं। वे सफल प्रहसन, व्यंग्य तथा सामाजिक जीवन की विसंगतियों को लेकर गम्भीर एकांकी लिखनेवाले समर्थ नाटककार हैं। 'लक्ष्मी का स्वागत' सामाजिक जीवन की विसंगतियों पर लिखा गया गम्भीर एकांकी है। इनके प्रमुख एकांकी संकलन हैं—देवताओं की छाया में, तूफान से पहले, चरवाहे, पक्का गाना, पर्दा उठाओ—पर्दा गिराओ, साहब को जुकाम है आदि। आलोचकों ने प्रेरक के एकांकी-रूपकों को तीन श्रेणियों में बाटा है—सामाजिक, प्रतीकात्मक और मनोवैज्ञानिक। 'लक्ष्मी का स्वागत' एक आलोचक के शब्दों में 'पूँजीवादी मनोवृत्ति का दिग्दर्शक' सामाजिक एकांकी है। जिस प्रकार की मध्यवर्गीय समाज की जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं और रूढ़ियों की ओर 'लक्ष्मी का स्वागत' में ध्यान आकृष्ट किया गया है और उन रूढ़ियों और परम्पराओं के प्रति विद्रोह का वीज उगाने में जिस प्रकार यह एकांकी समर्थ है, यह अश्क के एकांकी-रूपकों की एक विशेषता है। अश्क के प्रायः सभी एकांकी एक-एक साधारण-सी घटना या भावना को लेकर चलते हैं और उनमें बड़ी-से बड़ी वात कह दी जाती है। उनके एकांकी विना कल्पना का सहारा लिये पाठक के मन को प्रभावित करने की कला से पूर्ण हैं।

अश्क को रंगमंच का व्यापक अनुभव है। उनके रूपकों में संवाद उपयुक्त रहते हैं और रंग-निर्देश पूर्ण। उनके रूपकों में अभिनेयता का गुण पूर्णतया विद्यमान है। मोहनराकेश के शब्दों में "अश्क उन नाटककारों में हैं; जो नाटक लिखते ही नहीं, नाटकीय ढंग से जीते भी हैं।...अश्क स्वयम् एक सफल अभिनेता रहे हैं; इसलिए इनके व्यक्तिगत अनुभव ने इनके एकांकियों में वह गति ला दी है, जो विना ऐसे अनुभव के नहीं आ पाती।"

श्री जगदीशचन्द्र माथुर रचित 'रीढ़ की हड्डी' विषय की दृष्टि से सामाजिक

एकांकी है। आलोचकों ने 'रीढ़ की हड्डी' को श्री माथुर के श्रेष्ठ सामाजिक एकांकी रूपकों में सर्वोत्तम माना है। इसकी घटना साधारण-सी है। अपने वाप के साथ विवाहार्थी लड़का, लड़की देखने आता है। वह हर दृष्टि से लड़की को परखना चाहता है—खूबसूरती, शिक्षा (वाप की दृष्टि में केवल मैट्रिक तक, अधिक नहीं) संगीत-ज्ञान, चित्रकला में रुचि आदि-आदि। लड़की उमा लड़के और उसके वाप के इन दकियानूसी क्रिया-कलापों पर खीझ उठती है और वर महोदय के आचरण की पोल खोल देती है और जाते हुए उनसे कह देती है—"घर जाकर यह पता लगाइयेगा कि आपके लाड़ले वेटे के रीढ़ की हड्डी है भी या नहीं।" खीझ की हँसी के रोने में वदल जाने पर एकांकी का अन्त होता है। निम्न मध्यवर्ग की दयनीयता और करुणा का चित्र प्रस्तुत करके सामाजिक मन को झकझोर देने में 'रीढ़ की हड्डी' समर्थ एकांकी है। यह एकांकी समस्या एकांकी मात्र ही नहीं रह गया है, प्रत्युत जीवन के एक विशेष पहलू पर प्रकाश भी डालता है।

श्री जगदीशचन्द्र माथुर यद्यपि उच्च प्रशासन के रूप में कार्य करते रहे, तथापि साहित्य और विशेषतः नाट्य-कला की ओर उनकी स्वाभाविक रुचि रही। रंगमंच और रंगशिल्प के वे भी मर्मविद् विद्वान् हैं। मोहनराकेश ने लिखा है कि "कई नाटककारों की तुलना में जगदीशचन्द्र माथुर ने वहुत कम नाटक लिखे हैं, परन्तु नाटक के रचना-शिल्प पर इनका अधिकार अपनी पीढ़ी के सभी लेखकों से वढ़कर है। इसका कारण सम्भवतः यही है कि उन्हें स्वयं रंगमच का पर्याप्त अनुभव है।''''माथुर ने भारतीय तथा पाश्चात्त्य नाटक-साहित्य का विशद अध्ययन किया है, जिससे इनके नाटकों में भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि का प्रभाव भी है और पाश्चात्त्य नाट्य-शिल्प का भी।"

श्री माथुर के नाट्य-रचनाकाल का आरम्भ १९३७ ई० से माना जाता है। 'भोर का तारा' तथा 'ओ मेरे सपने' इनके प्रसिद्ध एकांकी-संकलन हैं। नाट्य-शिल्प-क्षेत्र में माथुरसाहव नये प्रयोग कर रहे हैं। इनका नाटक 'पहिला राजा' इसका प्रमाण है। सेठ गोविन्ददास के अनुसार आपने आधुनिक जीवन और समाज का बड़े यथार्थवादी ढंग से चित्रण किया है। एक आलोचक के शब्दों में

श्री माथुर "एकांकी समाज की समस्याओं को लेकर चलते हैं। गम्भीरता लिये हुए और व्यंग्यपूर्ण होते हैं।"

श्री विष्णुप्रभाकर--रचित 'सीमा-रेखा' विषय की दृष्टि से राष्ट्रीय चेतना-प्रधान एकांकी है। इसमें चार भाइयों के रूप में स्वतन्त्र भारत के चार प्रतिनिधियों और उनके द्वंद्व-संघर्ष को उपस्थित किया गया है। लक्ष्मीचन्द्र व्यापारी हैं, शरत्चन्द्र उपमन्त्री हैं, सुभाषचन्द्र जननेता हैं, कैप्टेन विजय पुलिसकप्तान हैं। अरविन्द दस वर्ष का बच्चा है, जो बड़े भाई का बेटा है—व्यापारी लक्ष्मीचन्द्र का। सबके भिन्न-भिन्न स्वार्थ हैं और उन्हीं के अनुरूप भिन्न-भिन्न दृष्टियाँ और कर्त्तव्य। फ़लस्वरूप एक विराट् संघर्ष उठ खड़ा होता है, जिसमें अरविन्द, विजय और सुभाष की मृत्यु हो जाती है। और इस प्रकार यह घर की क्षति देश की क्षति के रूप में उभरकर आती है और मानने को विवश करती है कि जनतन्त्र में सरकार और जनता के बीच कोई विभाजक-रेखा नहीं होती।

वस्तुतः राष्ट्र-चेतना का विचारणीय और चिंतक पक्ष इसमें बड़े ही मर्मस्पर्शी ढंग से स्पष्ट हुआ है। देश में इस प्रकार के संघर्ष और स्वार्थ-द्वंद्व निरन्तर बढ़ते जा रहे हैं। विष्णुजी ने इस एकांकी द्वारा स्वस्थ समदृष्टि देने का सशक्त प्रयत्न किया है।

विष्णुप्रभाकर एकांकी रेडियो-रूपक के रूप में अधिक सफल होते हैं। रंग-दृष्टि से यह एकांकी रेडियो-एकांकी है। इनकी शताधिक नाट्य-रचनाएँ हैं। प्रायः सभी एकांकी रेडियो से प्रसारित हो चुके हैं। डॉ० सत्येन्द्र ने प्रभाकरजी की कला के विषय में विचार करते हुए लिखा है—"विष्णुप्रभाकर की एकांकी-कला रेडियो टेकनीक पर विशेष निर्भर करती है क्योंकि इनके अधिकांश एकांकी रेडियो के लिए लिखे गये हैं। किन्तु उन सबमें संयमित भावसौष्ठव के साथ मानवता का स्पन्दन सबसे अधिक मुखर है। एकांकीकार में न तो भावुकता का अतिरेक मिलेगा और न बौद्धिक कड़वाहट, न व्यक्तिवादी अहंमन्यता.... इनके एकांकियों की कथावस्तु वर्तमान युग ही की वस्तु है और किसी-न-किसी सामाजिक या राजनीतिक समस्या से सम्बन्ध रखती है।....श्री विष्णु में प्रेमचंदजी

का हृदय जाग्रत है। वे मानवीय गुणों में विश्वास रखते हैं और उन्हीं से अभिभूत हैं।"

श्री विष्णुप्रभाकर के प्रमुख एकांकी-रूपक संकलन हैं—इंसान, रहमान का बेटा, क्या वह दोषी था, अशोक, प्रकाश और परछाईं, दस बजे रात, बारह एकांकी आदि। डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल ने श्री विष्णुप्रभाकर को 'मनोवैज्ञानिक स्वर के प्रसिद्ध नाटककार' कहा है। डॉ० लाल के अनुसार "मानव-मन की भीतरी तहों को समझने और उन्हें उद्घाटित करने में इनके एकांकी....पर्याप्त प्रसिद्ध हैं।" सेठ गोविन्ददास के अनुसार विष्णुप्रभाकर के एकांकी रूपकों के विषय 'समाज तथा देश की विविध सामाजिक, राजनीतिक तथा मनवैज्ञानिक समस्याएँ एवं विकास की नाना योजनाएँ' हैं। कदाचित् हिंदी में विष्णुप्रभाकर से अधिक एकांकी और किसी ने नहीं लिखे।

डॉ० लक्ष्मीनारायणलाल—रचित एकांकी 'वसंत ऋतु का नाटक' विषय की दृष्टि से एक प्रेम-विषयक सुखांत सामजिक कहानी है जिसका सुखद अंत नाटकीय ढंग से होता है। डॉ०लाल ने इस एकांकी को 'खुले रंगमंच का नाटक' कहा है। वस्तुतः इस एकांकी का वस्तु-संघटना और इसकी नवीन शैली की अभिनयशीलता उल्लेख्य है। यही इनका वैशिष्ट्य है। डॉ० लाल द्वारा संपादित 'सातरंग एकांकी' में उन्हीं के विषय में कदाचित् डॉ० रघुवंश ने लिखा है कि "डॉ० लाल प्रारंभ से ही नाटक की अपेक्षा संपूर्ण रंगमंच की कल्पना से प्रेरित रहे हैं।....नाटक की रंगमंच-संबंधी इस सम्पूर्ण दृष्टि और सम्भावनाओं ने उनको सदा आंदोलित किया है। एक ओर लाल ने आज के सामाजिक जीवन की यथार्थ समस्याओं को व्यापक तथा सूक्ष्म स्तर पर ग्रहण किया है, तो दूसरी ओर अपने प्रत्येक एकांकी में रंगमंच को अधिकाधिक प्रत्यक्ष तथा उपलब्ध कराने का सफल प्रयत्न किया है। आधुनिक रंगमंच-अन्वेषण और उसके विविध रूप की प्रतिष्ठा में इनका नाम हिन्दी-एकांकी में परम उल्लेखनीय है।....'वसंत ऋतु का नाटक' रंगमंच की दृष्टि से एक शक्तिशाली प्रयोग है—खुले रंगमंच का।"

डॉ० लाल का कथन है कि भारत में; विशेषकर हिन्दी-क्षेत्र में, एकांकी का उदय पूर्णतः रंगमंच की माँग से हुआ है। डॉ० लाल का यह कथन भले ही पूर्णतः सत्य न हो कि इनके एकांकी 'वस्तुतः रंगमंच की इसी आकांक्षा से स्फुरित और अनुप्राणित' है। यह सत्य ही है कि डॉ० लाल ने 'रंगमंच की विभिन्न तकनीकों का अध्ययन कर हिन्दी-एकांकी को नयी दिशा दी है। आपने सामाजिक नाटकों में विभिन्न रंगमंचीय प्रयोग किये हैं। 'वसंत ऋतु का नाटक' में भी आपने खुले मंच पर दर्शकों को नाटक में सम्मिलित करने का प्रयत्न किया।

डॉ० लक्ष्मीनारायण के अनेक एकांकी संकलन हैं—ताजमहल के आँसू, पर्वत के पीछे, नाटक बहुरंगी, नाटक बहुरूपी।

श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा द्वारा सम्पादित 'नव एकांकी' में प्रकाशित मंतव्य के अनुसार लाल के एकांकी मुख्य रूप से सामाजिक और मनोवैज्ञानिक हैं।.... सामाजिक एकांकियों में इन्होंने मध्यवर्गीय समाज का बड़ा ही यथार्थनिष्ठ चित्र प्रस्तुत किया है।....पात्रों के मनोभावों और आंतरिक हलचलों का चित्रण प्रस्तुत करना लाल के एकांकियों की बहुत बड़ी विशेषता है।



